सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन मवाई- 283202 (आगरा) उ.प्र.

प्रकाशन तिथि : 01.09.2018 मूल्य - एक प्रति : 20/-, द्विवार्षिक : 360/-

वर्ष : 51 ; अंक : 6 सितम्बर 2018

अमृतकण

चला लक्ष्मीश्चला: प्राणाश्चलं जीवित यौवनम्।
चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चल:।।

(चाणक्यनीति दर्पण)

अर्थात् इस चराचर जगत में लक्ष्मी (धन सम्पदा), प्राण यौवन और जीवन (आयु)– सब चलायमान और नश्वर हैं, केवल एक धर्म ही निश्चल और शाश्वत् है। जो सदा साथ रहता है और मृत्यु के बाद भी साथ जाता है। अत: सुख प्राप्ति के लिए हमें धर्म का आचरण करना चाहिये। पापाचरण कदापि नहीं।

• • •

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।

(कठोपनिषद् 2/2/9)

अर्थात् जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट एक ही अग्नि नाना रूपों में उनके समान रूपवाला सा हो रहा है, वैसे ही समस्त प्राणियों का अन्तरात्मा परब्रह्म एक होते हुए भी नाना रूपों में उन्हीं के जैसे रूपवाला हो रहा है और उनके बाहर भी है।

• • •

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।।

(गीता 5/29)

मेरा भक्त मुझको सब यज्ञ और तपों का भोगने वाला सम्पूर्ण लोकों के ईश्वर का भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूतप्राणियों का सुहृद् अर्थात् स्वार्थ रहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्त्व से जानकर शान्ति को प्राप्त होता है।

• • •

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 51
अंक 6

सितम्बर
2018

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरत्तो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विपदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

यामाराध्य विरिंचिरस्य जगतः स्रष्टा हरिः पालकः
संहर्ता गिरिशः स्वयं समभवद्ध्येया च या योगिभिः।
यामाद्यां प्रकृतिं वदन्ति मुनयस्तत्त्वार्थविज्ञा परां
तां देवीं प्रणमामि विश्वजननीं स्वर्गापवर्गप्रदाम्।।

अर्थात्

जिनकी आराधना करके स्वयं ब्रह्माजी इस जगत के सृजनकर्ता हुए, भगवान विष्णु पालनकर्ता हुए तथा भगवान शिव संहार करने वाले हुए, योगिजन जिनका ध्यान करते हैं और तत्वार्थ जानने वाले मुनिगण जिन्हें मूल प्रकृति कहते हैं– स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले उन जगज्जननी भगवती को मैं प्रणाम करता हूँ।

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक : आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक : डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक : समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ...

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 7
3. श्री मद्‌भागवत में योग–परिचर्चा– डॉ. विजय सिंह 11
4. श्रीमती रूकमणी देवी की प्राण रक्षा– जगदीश राए बंसल 15
5. भजो रे! प्रभु रामलाल सुखदाई– श्रीमती कृष्णा वर्मा 19
6. मेरे गुरुदेव– प्रोफेसर वीरेन्द्र सिंह वर्मा 20
7. योग में गुरु की अपेक्षा– श्री डॉ. ऋषिराम शर्मा 27
8. योग–दर्शन में 'ईश्वर–प्रणिधान'– श्री कृष्णानन्द गुप्त 35
9. श्री गुरु पूर्णिमा एवं श्री रुद्रमहायज्ञ महोत्सव धूमधाम से सम्पन्न 39
10. योग–आसन 40

एक प्रति	: रु.	20.00
वार्षिक शुल्क	: रु.	180.00
द्विवार्षिक	: रु.	360.00
आजीवन	: रु.	1000.00

सिद्धियाँ उपसर्ग कहाँ ?

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

योगदर्शन के कैवल्यपाद के प्रथम सूत्र में भगवान पतंजलि देव ने—

''जन्मौषधि मन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः'' कह करके सिद्धियों के पाँच प्रकार बतलाये हैं। उनमें से प्रथम जन्म से होने वाली सिद्धियाँ हैं। जैसे किसी मनुष्य ने तप और स्वाध्याय के फलस्वरूप उत्तम कुल में मनुष्य शरीर ग्रहण किया, उसको जैसा भी दिव्य या अदिव्य शरीर प्राप्त हुआ वह प्राक्तन कर्म विपाक के अनुसार ही उसे वैसा ही प्राप्त हुआ है। यह जन्मजा सिद्धि कहलाती है। अपने जन्म के साथ ही उसको यह सिद्धि प्राप्त हुई और मरणपर्यन्त बनी रहेगी। दूसरे इस उदाहरण को इस प्रकार समझ लेना चाहिए—पक्षियों का आकाश गमन करना उनकी जन्मजा स्वाभाविक सिद्धि है। इसी प्रकार से जल में ऊँची और नीची गति लेना मछली को जन्म से स्वाभाविक सिद्धि है। वही जन्मजा सिद्धि कहलाती है।

इसके बाद दूसरी सिद्धि जिसका भगवान पतंजलिदेव ने औषधियों से होने वाली सिद्धि कहकर जिक्र किया है। दिव्य औषधियाँ सेवन करने से मनुष्य के शरीर में तत्काल ही एक नया परिणाम पैदा हो जाता है। कितनी ही ऐसी औषधियाँ हैं जिनका सेवन करने से मनुष्य कायाकल्प तक कर डालते हैं। यह कायाकल्प औषधियों की शक्ति से प्राप्त हुआ। इसलिए इसका नाम **औषधिजा सिद्धि** नाम से प्रख्यात हुआ। एक मनुष्य सन्निपात के दुष्परिणाम स्वरूप मरण शैया पर पड़ा हुआ है। एक आयुर्वेद विद्वान कोई रसायन उसको खिलाता है तो वह तत्काल बोलने लगता है। यह सब कुछ उस औषधि का प्रभाव हुआ जिससे कि वह इस प्रकार बोलने लग गया।

यह उस औषधि के बल से ही हुआ क्योंकि वह इस शक्ति से शून्य हो चुका था। इसी हेतु ऐसी सिद्धि को औषधिजा सिद्धि कहते हैं। जैसे—

कायाचित्तेन्द्रियाणामभिष्ट उत्कर्ष सिद्धिः।

क्योंकि सिद्धि का अर्थ ही यह है जो काया, चित्त और इन्द्रियों में यकायक परिणाम दिखलाये। उसके बाद तीसरी सिद्धि भगवान पतंजलिदेव ने मन्त्रजा कहकर वर्णित की है। मन्त्र के जपने से किसी के शरीर में तत्काल ही विशेष परिणाम पैदा होता है। उसी का नाम **मन्त्रजा सिद्धि** है। पाठकों ने बहुत जगह यह देखा होगा कि बहुत से लोग कई-कई प्रकार के रोग हटाने के लिए छोटे-छोटे उपचार किया करते हैं और वे साधारण से किन्हीं साधु—महात्मा के द्वारा बताये हुए साधारण—साधारण हिन्दी के शब्दों में मन्त्र सूर्यग्रहण—चन्द्रग्रहण

आदि के समय जप लिया करते हैं, उनके जपने की विशेष विधि हुआ करती है। उस विधि के साथ जप कर लेने पर उन्हीं मन्त्रों से सिद्धियाँ हो जाया करती हैं और उन मन्त्रों को जपने से लोगों का कष्ट निवारण होते देखा गया है। इस प्रकार की सिद्धियाँ मन्त्रजा सिद्धियाँ कहलाती हैं। वेदमन्त्रों के प्रयोग से जो यज्ञ–अनुष्ठान किये जाते हैं और उनसे बड़े–बड़े दिव्य फल प्राप्त किये जाते हैं वे भी मन्त्रजा सिद्धियाँ हैं जिनके फलस्वरूप संसार में बड़े–बड़े अनुपम लाभ देखने में आये हैं। इस मन्त्रजा सिद्धि के बाद चौथी सिद्धि है तप से होने वाली सिद्धि।

साधक ज्यों–ज्यों अपने द्वन्द्व–सहन का अभ्यास बढ़ाता है त्यों–त्यों उसको तप से होने वाली सिद्धियाँ उपलब्ध होती चली जाती हैं। जैसे–ध्रुव को ध्रुवत्व, तप से प्राप्त हुआ क्योंकि–हमारे आचार्यों का मत है–

तपसा ब्रह्मचर्येण देवा मृत्युमुपाघ्नत।

अर्थात्–तप और ब्रह्मचर्य के द्वारा देवताओं ने मृत्यु को जीत लिया। तप के निरन्तर अभ्यास करने पर कायिक और ऐन्द्रिय सिद्धि प्राप्त हो जाती है। यही सब सिद्धियाँ **तपोजा सिद्धियाँ** कहलाती हैं।

इसी प्रकार से योगी जो अपने अभ्यास के बल से सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं वे **समाधिजा सिद्धियाँ** कहलाती हैं। जिन सिद्धियों का वर्णन योग दर्शन के विभूति–पाद में आया है वे सभी सिद्धियाँ समाधिजा सिद्धियाँ हैं। सिद्धि शब्द का अर्थ हम पहले ही लिख चुके हैं–

कायचित्तेन्द्रियाणामभिष्टुत्कर्षः सिद्धिः।

अर्थात्–काया, चित्त एवं इन्द्रियों का मनचाहा उत्कर्ष ही सिद्धि है। जैसे इस समय हमारा शरीर गुण धर्मों के कारण दुर्बल एवं कृश है किन्तु तत्व विजयी योगी अपने संकल्प से शरीर के सभी अभावों की पूर्ति कर लेता है एवं किशोर वय बना रहता है। यह उसकी कायिक सिद्धि है। चित्त की चिन्तन शक्ति से सभी अभीष्ट कार्य सिद्ध हो जाना, यह चित्त की शक्ति का परिणाम है। हमारे आँख की शक्ति इस समय सीमित है, किन्तु योगाभ्यास के द्वारा जब हमारी नेत्र शक्ति का उत्कर्ष होगा तब हम करोड़ों कोस तक देखने लगेंगे एवं कर्णेन्द्रिय के द्वारा करोड़ों कोस तक का सुनने लगेंगे। घ्राणेन्द्रिय के द्वारा करोड़ों कोस तक की गन्ध ले सकेंगे। त्वचा के द्वारा करोड़ों कोस तक का स्पर्श कर सकेंगे, यही हमारी इन्द्रियों का पूरा–पूरा उत्कर्ष है। जिस इन्द्रिय की जिस तत्व से उत्पत्ति हुई है वह तत्व जहाँ विद्यमान है वहाँ तक उन इन्द्रियों की शक्ति विस्तृत है।

उदाहरणार्थ–जैसे हमारी आँख की उत्पत्ति अग्नि–तत्व से है। अतः ब्रह्माण्ड भर में जहाँ तक अग्नि है वहाँ तक अवश्य हमारी आँख देखने वाली हो सकती है। जहाँ तक आकाश है वहाँ तक के शब्द हमारे कान सुन सकते हैं। जहाँ तक वायु है वहाँ तक के दिव्यादिव्य स्पर्श हमारी त्वचा अनुभव कर सकती है। जहाँ तक जल है वहाँ तक के रसों के रस को हमारी

रसना (जिह्वा) ग्रहण कर सकती है तथा जहाँ तक पृथ्वी है वहाँ तक के सभी प्रकार के गन्ध को हमारी नासिका ले सकती है। इसी का नाम **''कायेन्द्रियाणाममभिष्टुत्कर्ष:''** है।

इन सब बातों को सिद्धि का रूप देकर भगवान पतंजलिदेव ने ''योग दर्शन'' के विभूति पाद में वर्णित किया है। इसलिये सिद्धि साधक की अपनी शक्ति है।

शक्ति एवं शक्तिमान का सदा ही अभेद रहता है। शक्ति शक्तिवान से भिन्न चीज नहीं है। वह उसके साथ बिल्कुल अभिन्न है। जिस प्रकार पहलवान व्यायाम करके एवं खुराकें खा–खा करके अपने शरीर को बलिष्ठ बना लेता है तो वह उसका बल सदा उसके काम आया करता है और शरीर में परिपूरित रहता है। बलवान से बल अभिन्न है, इसी प्रकार से शक्तिवान से शक्ति अभिन्न है।

अब रही यह बात कि–बहुत से लोगों का यह मत है कि सिद्धि उत्कर्ष में अन्तराय (बाधा) है। इस सम्बन्ध में भगवान पतंजलि देव ने भी योगदर्शन के विभूति पाद में **''ते समाधावुपसर्गा: व्युत्थाने सिद्धय:''** कह करके प्रातिभ, श्रावण, वेदनादर्श आदि को समाधि के लिए उपसर्ग और उत्थान की स्थिति में सिद्धि कहा है। महर्षि की यह वाणी अवश्य सत्य है क्योंकि सिद्धि प्राप्त व्यक्ति मान–सम्मान के झमेले में पड़कर समाधि–सुख के लिए लापरवाही कर बैठता है। इसलिए इन शक्तियों को महर्षि ने उपसर्ग कहा; किन्तु जिस व्यक्ति ने यम–नियमों की साधना की हो एवं वैराग्य को पूर्णरूपेण जाग्रत कर लिया हो तो वह व्यक्ति मानापमान के झमेले में कभी नहीं पड़ेगा। ऐसे व्यक्ति आप्तकाम हो जाते हैं। उनकी कोई भी कामना प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता। इसलिये उनकी स्थिति में सिद्धियाँ कभी भी उपसर्ग नहीं बन सकतीं। सिद्धि मनुष्य का अपना बल है। जिस प्रकार से अच्छे खाद्य–पदार्थ खाने पर शरीर में बल होना स्वाभाविक है, उसी प्रकार से साधक को मन की एकाग्रता हो जाने पर सिद्धियाँ प्राप्त हो जाना स्वाभाविक है। साधक को साधना–काल में यदि सिद्धि नहीं हो तो उसकी साधना विफल है। इस प्रकार का साधन–हीन व्यक्ति आत्मपद को नहीं प्राप्त कर सकता। जैसे–

नायमात्मा बलहीनेन लभ्य:।।

इसी कारण भगवान सदाशिव ने अपने मुखारविन्द से स्वयं कहा है–

नानामार्गैस्तु दुष्प्रापं, कैवल्यं परमं पदम्।
सिद्धि मार्गेण लभते, नान्यथा पद्मसंभव।।

(योगशिखोपनिषद)

अर्थात्–मनुष्य चाहे हजारों मार्गों में भटकता रहे, कैवल्य–पद को प्राप्त करना बहुत कठिन है। केवल सिद्धि–मार्ग ही एक ऐसा उत्कृष्ट मार्ग है जिसमें सहज ही वह कैवल्य पद प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकरण को लिखने की इसलिए ही आवश्यकता पड़ी क्योंकि बहुत से लोगों के मन में इस प्रकार की भ्रान्ति रहती है कि–सिद्धि मार्ग में चलना ही नहीं चाहिए। वस्तुतः बात तो यह है कि ऐसे लोग गतेन्द्रिय होते हैं। वे लोग कुछ भी नहीं कर सकते, इसलिए।

असक्तस्तत्पदं गन्तुं ततो निन्दां प्रकुर्वति।

क्योंकि वे स्वयं तो सिद्धियों को पा नहीं सकते। इसलिए सिद्धियों की निन्दा करके ही अपने अभिमान की पुष्टि कर लिया करते हैं। इस विषय में एक छोटी सी लोकोक्ति है कि– ''लोमड़ी के अंगूर खट्टे''। बात साधारण सी है–एक लोमड़ी ने ऊँचे वृक्ष पर चढ़े हुये अंगूरों की बेल को देखकर अंगूर को खाने का प्रयत्न किया, किन्तु जब वह उनको खा नहीं सकी तो निराश होकर बैठ गई। उसकी इस स्थिति को देखकर किसी ने कहा 'लोमड़ी! तुम ये अंगूर क्यों नहीं खा लेती?' तो उसने उत्तर दिया कि 'भाई खा तो जरूर लेती किन्तु ये अंगूर खाने लायक नहीं हैं, खट्टे हैं।'' यही दशा उन लोगों की है जो बेचारे साधना नहीं कर सकते। खाट पर पड़े रहकर उनको आराम करने की आदत पड़ गयी है। उनको सिद्धि होगी ही नहीं। अतः सिद्धि की निन्दा करके ही अपने मन को सन्तुष्ट कर लेते हैं। अतः विज्ञ पाठकों को चाहिए कि वे अपनी साधना को दृढ़ता के साथ उत्कृष्ट बनायें ताकि सब प्रकार के भय नष्ट हो जायें।

550 वर्ष से समाधि में लामा योगी

हिमाचल प्रदेश के लाहुल स्पीति के एक गाँव में एक योगी आज भी समाधि में लीन हैं। उनके बाल और नाखून बढ़ जाते हैं और शारीरिक वजन में भी परिवर्तन हो जाता है। बौद्ध–धर्मावलम्बी इस योगी का नाम है संघा तेनजिंग। उनके समाधिस्थ होने का पता 1975 में उस समय लगा जब उस क्षेत्र में भयंकर भूकम्प आया और बचाव कार्य के लिए भारत–तिब्बत सीमा पुलिस के जवान इस क्षेत्र में पहुँचे। मलवा हटाये जाते समय जब खून बहते हुए जवानों ने देखा तो सावधानीपूर्वक कार्य को अंजाम देते हुए उन्हें समाधिस्थ अवस्था में बैठे उक्त योगी के उन्हें दर्शन हुए। उनके सिर पर चोट लगी थी, जिसमें रक्तस्राव हो रहा था।

स्थानीय छोकला नामक ग्रुप के अनुसार ये योगी लामा तब से इस स्थान पर साधनारत हैं जब इस क्षेत्र में केवल साँपों–बिच्छुओं का ही बसेरा था। तिब्बत के धर्मगुरु श्री दलाई लामा से सलाह–मशविरा करने के बाद पाँच शताब्दियों से समाधिस्थ इस योगी के लिए एक छोटा–सा शीशे का घर बना दिया गया है, जहाँ वे पूर्व मुद्रा में ही अवस्थित हैं। उन्हें एक शक्ति सम्पन्न लामा माना जाता है और नित्य ही उनका पूजा–अर्चन होता है।

उल्लेखनीय है कि उक्त योगी पर न तो किसी पदार्थ का लेप लगा हुआ है और न ही उनके शारीरिक क्षय को बचाने का कोई अन्य उपाय ही किया गया है। उनके मूल शरीर की विद्यमानता इस बात का प्रमाण है कि वे उच्चकोटि के योगी साधक हैं।

सम्पादकीय–

योग का स्वरूप

–आचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज

योग शब्द युज् = समाधौ (**दिवादिगण**) से धञ प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार युजिर ञ योगे **रूधादिगण तथा युज् =** संयमने **चुरादिगण** से भी योग शब्द की निष्पत्ति होती है। जिनका अर्थ जोड़ तथा संयमन है। इनमें से योग दर्शनकार को युज् = समाधौ धातु से बना योग शब्द ही अभीष्ट है।

संस्कृत **वाङ्मय** में इन तीनों धातुओं से बने योग शब्द का बाहुल्य से प्रयोग होता है। जिसके आधार पर लोग अपनी–अपनी अभिरुचि एवं योग्यता अनुसार अर्थ करते हैं।

योग शब्द का अर्थ विभिन्न–विषय के ग्रन्थों में भिन्न–भिन्न होता है। ज्योतिष शास्त्र में ग्रहों का योग, आयुर्वेद शास्त्र में औषधियों का योग, गणित शास्त्र में अंकों का योग यह सब अपने भिन्न–भिन्न अर्थ को प्रकाशित करते हैं।

गीता में योग कई अर्थों में प्रयुक्त हुआ है यथा–योगः कर्मसु कौशलम्, समत्वं योग उच्यते–इत्यादि–इत्यादि। योग के स्वरूप को पूर्णतया समझने के लिए योगदर्शन का अध्ययन परमावश्यक है।

जिस प्रकार से हम एक व्यक्ति को कई नामों से पुकारा करते हैं किन्तु व्यक्ति की आकृति या स्वरूप एक ही होता है। इसी प्रकार से योग की परिभाषाएँ एवं लक्षण अनेक हो सकते हैं। किन्तु योग का स्वरूप एक ही है, वह है इसका अविनाशी स्वरूप–शाश्वत् स्वरूप। इस प्रकार से योग का वास्तविक स्वरूप दिव्य एवं अविनाशी है। योग क्रिया या साधन ही नहीं साध्य भी है, साधना की आखिरी मंजिल है। गीता में भगवान ने दो स्थल पर इसे अविनाशी कहा है। एक तो चौथे अध्याय के प्रथम श्लोक में भगवान कहते हैं–''**इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्**' इस अविनाशी योग को सर्वप्रथम मैंने विवस्वान के प्रति कहा था। इसी प्रकार से नौवें अध्याय के दूसरे श्लोक में राजविद्या राजगुह्य के प्रकरण में भगवान कहते हैं–

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्।।

अर्थात् हे अर्जुन! ये योग समस्त विद्याओं का राजा है। गोपनीय वस्तुओं में सबसे अधिक गोपनीय रखने की विद्या है। सबसे अधिक पवित्र है, सर्वोत्तम है। इसका प्रत्यक्ष अनुभव

किया जा सकता है; और ये अपने जीवन में धारण करने योग्य वस्तु है तथा करने में भी सरल है और स्वरूप से अविनाशी है।

योग दर्शन में योग का स्वरूप बताते हुए कहा है–''**तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्**' योग के द्वारा बुद्धि एवं पुरुष की पूर्ण शुद्धि हो जाने पर आत्मा अपने विशुद्ध स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि शास्त्रों में योग की अनेक परिभाषाओं के होने पर भी इसका एक ही स्वरूप है जो अविनाशी है।

यद्यपि उपनिषदों और अन्य यौगिक ग्रन्थों में भी योग का प्रतिपादन हुआ है किन्तु योग का सम्पूर्ण व शुद्ध स्वरूप योग सूत्रों के अध्ययन से ही मिल पाता है। हमारे दर्शनकारों एवं ऋषि–मुनियों ने साधन प्रणाली एवं अधिकारी भेद से साधना के कई मार्ग बतलाये हैं। जिसके साथ योग शब्द जुड़ा होता है। तद्यथा–मन्त्र योग–भक्तियोग–ध्यान योग–बिन्दु योग नाद योग–हठयोग एवं राज योग आदि–आदि।

तात्पर्य यह है कि जो उपासना मार्ग हमें समाधि द्वार तक पहुँचा दे वह योग शब्द से जुड़ जाता है। उपर्युक्त अनेक नामों से व्यवहृत होते हुए भी साधना क्रम एवं परम्परानुसार समाधि प्राप्ति के दो ही उपाय हैं जिन पर चलकर साधक सिद्धि को प्राप्त हो जाया करता है। ये उपाय हैं–1. प्राणजय, 2. मनोजय का।

प्राणलय–आत्मन एवं प्राणो जायते के अनुसार आत्मा से प्राण उत्पन्न होता है। इसीलिए प्राण को प्राणब्रह्म कहा गया है। हठयोग के द्वारा प्राणलय की साधना सम्पादित होती है। इसके उपायभूत साधन, आसन, प्राणायाम, बन्ध–मुद्राएँ एवं षटकर्म आदि हैं। हठयोग ग्रन्थों में प्राणलय के लिए ही समस्त साधनाओं का उपदेश है। प्राणायाम के अभ्यास से प्रकाश के आवरण क्षय होता है,[1] तथा प्रज्ञालोक का उदय होता है। जिस प्रकार से मदमस्त हाथी को कील के द्वारा वश में किया जाता है उसी प्रकार से चंचल मन को प्राणायाम द्वारा वश में किया जाता है। जीव प्राण के निरन्तर आवागमन द्वारा शरीर में बद्ध रहता है। प्राण के स्थिर हो जाने पर समाधि हो जाती है। आजकल के समय में प्राणायाम के अधिकारी विरले ही होते हैं अतएव यह परम्परा भी अत्यल्प प्रचलित है।

मनोलय–मनोलय के अन्तर्गत मन्त्र योग, भक्ति योग, ध्यान योग, विन्दु योग इत्यादि आते हैं। हठयोगी को भी ध्यान, धारणा एवं समाधि का अभ्यास करना पड़ता है।

परन्तु इसमें उसे शीघ्र ही सफलता मिल जाती है। प्राण और शरीर समस्त विश्व में दो शक्तियाँ हैं। इनमें से एक के सिद्ध या जय हो जाने पर दूसरा स्वतः ही जय हो जाता है। क्योंकि इन दोनों का अभेद सम्बन्ध है। अतः साधक दोनों में एक के जय का प्रयत्न करके

1. ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् –योग सूत्र–2/52

परम सिद्धि को पा जाता है। योग दर्शन में दोनों ही उपायों का उल्लेख है।

भगवान पतंजलि देव ने योग के दार्शनिक स्वरूप को सामने रखते हुए इसकी परिभाषा **'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः'** कहकर की है। भाष्यकार ने योगः समाधि कहकर इसे और स्पष्ट किया है। इस चित्त वृत्ति निरोध का फल अगले सूत्र में **'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'** के द्वारा दर्शाया है। इस प्रकार सूत्रकार ने इन दो सूत्रों से योग का स्वरूप व फल उपदिष्ट कर दिया है। योग के वास्तविक स्वरूप को यह दो सूत्र प्रकाशित करते हैं। शेष सम्पूर्ण योगदर्शन इन सूत्रों की व्याख्या मात्र ही है।

सूत्र में **'सर्वचित्त वृत्ति निरोधः'** न कहे जाने पर समाधि दो प्रकार की हो जाती है।

1. सम्प्रज्ञात तथा 2. असम्प्रज्ञात—ये दोनों समाधियाँ चित्त की वृत्ति का निरोध करने वाली हैं। असम्प्रज्ञात में चित्तवृत्ति का पूर्ण निरोध हो जाता है। सांख्य—योग मत में प्रकृति के पदार्थों की भाँति चित्त भी त्रिगुणात्मिका तथा अचेतन माना जाता है। अतः उसकी वृत्तियाँ भी सात्विक, राजसी तथा तामसी भेद से तीन प्रकार की मानी जाती हैं। इन तीन प्रकार की वृत्तियों के ही चित्त की मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र व निरुद्ध पाँच भूमिका मानी गई है। इनमें से प्रथम तीन रज व तमो से अभिभूत रहने के कारण इन्हें योग की श्रेणी में नहीं रखा गया। संसार के समस्त प्राणी व साधारण मानव इसी तीन भूमिका में पड़े रहते हैं। एकाग्रावस्था से योग प्रारम्भ होता है। जिसमें सतोगुण प्रधान हो जाता है अन्य दो गौण रहते हैं।

योग की परम्परा

परमात्मा अपनी योग शक्ति से इस सृष्टि की रचना करते हैं। योग विद्या उतनी ही पुरानी है जितनी ये सृष्टि। योग के आदि वक्ता हिरण्यगर्भ हैं। महाभारत और याज्ञवल्क्य स्मृति में इसका वर्णन मिलता है। परन्तु यह हिरण्यगर्भ कौन थे इस विषय को इतिहासकार स्पष्ट नहीं कर पाये। कुछ लोग हिरण्यगर्भ एवं महर्षि कपिल को एक ही व्यक्ति मानते हैं। महाभारत में भी इसका उल्लेख मिलता है। हिरण्यगर्भ के विषय में कुछ और भी वर्णन महाभारत में है।

हिरण्यगर्भो द्युतिमान च एशच्छन्दसि स्मृतः।
योगैः सम्पूज्यते नित्यं स च लोके विभुः स्मृतः।।

इन उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि विभु परमात्मा ने ही योग तत्व का प्रारम्भ में उपदेश किया था।

श्री मद्भगवत् गीता में भगवान इसकी दृढ़ एवं सजीव परम्परा का संकेत करते हैं।

---

2. मनोयत्र विलीयते पवनस्तत्र लीयते पवनो लीयते यत्र मनस्तत्र लीयते

—हठ. प्र. उपदेश 4/23

'इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्'

सर्वप्रथम इस योग विद्या को मैंने विवस्वान को उपदेश दिया था। विवस्वान ने मनु को तथा मनु ने इक्ष्वाकु को इस विद्या का उपदेश किया था। इस प्रकार से यह विद्या प्राचीनकाल में राजर्शियों में प्रचलित रहा। कालान्तर में इसका लोप हो गया। भगवान कहते है कि हे! अर्जुन आज मैं उसी प्रचलित योग का उपदेश कर रहा हूँ।

उपनिषदों एवं अन्य यौगिक ग्रन्थों में भी समय-समय पर भगवान सदाशिव के द्वारा ब्रह्मादि देवों को, ऋषियों को तथा पार्वती को उपदेश देने का प्रमाण मिलता है। इस प्रकार से भगवान सदाशिव योग के आदि गुरु माने जाते हैं। आगे ये परम्परा मत्स्येन्द्रनाथ आदि नाथ योगियों के द्वारा आगे चलती रही है ये आगम परम्परा है। दो प्रकार की परम्परा प्रचलित रही है 1. आगम, 2. निगम।

आगम धारा में हठयोग, तन्त्रयोग, पशुपत योग एवं सिद्धयोग के नाम से प्रवाहित हुई है। इसमें नाथ सम्प्रदाय का प्रचलन रहा जिसमें मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ प्रभृति महान योगी हुए। चौरासी नाथ सिद्ध भी इसी परम्परा मे हुए हैं।

निगम मार्ग वेद प्रतिपादित मार्ग है। उपनिषद् वेद मार्ग है। इस काल में योग के लिए अध्यात्म विद्या, पराविद्या का प्रचलन था योग शब्द का स्पष्ट व अधिक प्रयोग श्वेताश्वतरोपनिषद में तथा अन्य उपनिषदों में हुआ है। अधिकारी-अनाधिकारी का विचार बहुत अधिक था अतः अधिकारी को ही ज्ञान व उपदेश की परम्परा प्राचीन काल में प्रचलित रही है।

भिद्यते हृदय ग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयते चास्य कर्माणि, तस्मिन दृष्टे परावरे।।

।। ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः।।

श्रीमद्भागवत में योग-परिचर्चा

डॉ. विजय सिंह

परात्पर ब्रह्म कृष्ण के संसर्ग में आने वाले जीव सद्गुणी हों, व अपार दुर्गुणी हों, उनका उद्धार होना ही है। दसम् स्कन्ध भागवत् का मर्म स्थल है। मानव देह में पूर्णावतार श्रीकृष्ण का प्राकट्य हुआ है। आसुरी बुद्धि वाले कंस, शिशुपाल आदि उनकी महिमा क्या भला जानते? देवराज इंद्र एवं स्वयं ब्रह्मा जी जिनके माया के प्रभाव से मोहित हो गये फिर साधारण देव एवं ऋषियों का कहना ही क्या?

पाँच वर्षीय बाल कृष्ण अपने सखाओं एवं बड़े भ्राता बलदाऊ के साथ गोचारण करने जाते है। ब्रज मण्डल में बालोचित नाना प्रकार की क्रीड़ा करते रहते हैं। इन्द्रियों को भलीभाँति वश में किये हुये योगी जनों को भी जिन परमात्मा प्रभु का सहज सानिध्य प्राप्त नही होता। वे प्रभु अपने सखा ग्वाल-गोपालों को सहज प्राप्त हैं। उन सबों के सौभाग्य की महिमा क्या कही जा सकती है-

यत्पादपांसुर्बहुजन्म कृच्छ्रतो
धृतात्मभिर्योगिभिरप्य लभ्यः।
स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः
किं वर्णयते दिष्टमतो ब्रजौकसाम।।

श्लोक 12 अ. 12 स्कं 10

क्रीड़ा निमग्न ग्वाल-बाल दाऊ एवं कृष्ण के साथ जिस समय नाना प्रकार के अभिनय में मस्त थे। उस समय अघासुर जो पूतना एवं बकासुर का भाई था, ब्रज में कृष्ण को मारने हेतु आया। वह एक विशाल अजगर का रूप धारण कर मुख खोल अपनी लम्बी जिह्वा को पृथ्वी पर पसार पड़ा हुआ था। उसका शरीर एक योजन लम्बे पहाड़ सा था। मुख गुफा-समान अंधेरा जीभ लाल सड़क सी दीखती थी।

निश्छल निर्मल ग्वाले गायों बछड़ों सहित भ्रमित हुये अघासुर के मुख में प्रवेश कर मूर्छित होते गये। इधर भगवान श्रीकृष्ण अघासुर के माया को जानकर सखा ग्वाल बालों को बचाने के उद्देश्य से अपना कर्तव्य निश्चित करके स्वयं उसके मुख में प्रवेश किये। और अपना शरीर इतना बढ़ा कर लिया कि अघासुर का गला ही रुँध गया। उसकी साँस रुकने से, व्याकुल

हो आँखे उलट गयीं और वह मृत्यु को प्राप्त हुआ। इधर भगवान ने अपने अमृतमयी दृष्ट–पात से मरे हुये बछड़ों सहित ग्वालबालों को जिला दिया। भगवान सहित वे सभी अघासुर के मुख से बाहर निकल आये। उस समय महान आश्चर्य घटित हुआ था। उस अजगर के स्थूल शरीर से एक महान ज्योति निकल कर श्रीकृष्ण में समा गई।

भगवान श्रीकृष्ण के किसी एक अंग की भावनिर्मित प्रतिमा यदि ध्यान के द्वारा एक बार हृदय में बैठा ली जाये तो वह सालोक्य, सामिप्य गति दान करती है। ''मनोमयी भागवती ददौ गतिम्।''

भगवान कृष्ण द्वारा जीवन प्राप्त ग्वाल बालों ने अघासुर वध की आश्चर्यजनक कथा एक वर्ष बाद ब्रज में अपने सम्बन्धियों को बतलाये थे। परम भागवत परीक्षित जी ने इसका कारण बताने हेतु भगवान शुकदेव जी से प्रार्थना किया। श्रीशुकदेव जी ने कहा–परीक्षित। तुम एकाग्र चित्त से इस कथा मर्म को सुनो। यह लीला अत्यन्त रहस्यमयी है।

बालकृष्ण अपने सखाओं सहित यमुना के किनारे आये। मनोहारी यमुना तटीय दृश्यों को देखते हुए भगवान साथियों से बोले दिन बहुत चढ़ आया है। हम लोगों को भोजन कर लेना चाहिये। बछड़े पानी पीकर तटीय हरी घासों को चरने लगे।

भगवान के आदेश को समवेत स्वर में अनुमोदन करते हुये प्रसन्न चित्त सभी ग्वाल बाल अपने–अपने कलेवे खोलकर भगवान के साथ सानन्द भोजन करने लगे। भगवान कृष्ण बीच में बैठे और मण्डलाकार ग्वाल बाल बैठकर भोजन कर रहे थे। विनोद भरी बाल चर्चायें, हँसी–विनोद करते हुये वन–भोजन हो रहा था।

इधर बछड़े हरी घास चरते–चरते घोर जंगल मे चले गये। जब ग्वाल बालों का ध्यान इस ओर गया तो वे सभी भयभीत हो गये। भक्त भय हारी श्रीकृष्ण ने कहा–मित्रों! तुम लोग भोजन करना बंद मत करो। मैं अभी बछड़ों को लिये आता हूँ।

परीक्षित! जड़ कमल से उत्पन्न ब्रह्मा जी ने अघासुर वध को आकाश से स्वयं देखकर। कृष्ण के योगेश्वर्य की परीक्षा लेनी चाही। अतः उन्होंने पहले बछड़ों को और बाद में श्रीकृष्ण के जंगल में बछड़ों को ढूँढ़ने के समय ग्वाल बालों को तिरोहित कर दिया।

श्रीकृष्ण बछड़े नहीं मिलने पर यमुना तट पर लौट कर देखा ग्वाल–बाल भी गायब है। तब उन्हें पुकारते हुये चारों ओर वन में ढूँढ़ा। न मिलने पर वे जान गये कि यह ब्रह्मा की करतूत है।

अब योगेश्वर कृष्ण ने बछड़ों की माताओं, ग्वाल बालों की माताओं तथा ब्रह्मा जी को भी आनन्दित करने के लिये स्वयं को बछड़ों एवं ग्वाल बालकों के रूप में बना लिया।

सर्व समर्थ श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा जी को मोहित करने हेतु ही यह माया रचा अन्यथा वे चाहते तो जहाँ ब्रह्मा जी ने बछड़ों एवं ग्वाल बालों को छिपा कर रखा था वहाँ से उन्हें ले आते।

ततः कृष्णो मुदं कर्तुं तन्मातृणां च कस्य च।
उभयायितमात्मानं चक्रे विश्वकृदीश्वरः।।18।।

अ. 13 स्क. 10

सायं होने पर अपने आत्मस्वरूप बछड़ों एवं ग्वाल बालों सहित ब्रज में प्रवेश किये। पूर्ववत् सब व्यापार घटित हुआ। परन्तु गायों और ग्वालिनों का आज अपने असली पुत्रों की अपेक्षा स्नेह अधिक उमड़ रहा था। इस प्रकार एक दो दिन नहीं वे सर्वात्मा कृष्ण अपने बछड़े एवं ग्वाल बालों के रूप में एक वर्ष तक बन और ब्रज में क्रीड़ा करते रहे।

जब एक वर्ष में दो–चार रोज बाकी रहा तब एक घटना देखकर बलदाऊ चकित हो गये। उन्होंने अनुभव किया कि श्रीकृष्ण में ब्रजवासियों का और मेरा जैसा अपूर्व प्रेम है, वैसा ही इन बालकों और बछड़ों पर भी बढ़ता जा रहा है। ज्ञान दृष्टि से जब बलराम जी ने देखा–बछड़ों ग्वाल बालों के रूप में श्रीकृष्ण–ही–कृष्ण हैं। भगवान कृष्ण ने बलराम जी को ब्रह्मा की सारी करतूत बताई।

ब्रह्मा जी ने ब्रह्मलोक से ब्रज में लौट कर देखा कि श्रीकृष्ण सभी ग्वाल–बाल बछड़ों सहित भली भाँति क्रीड़ा कर रहे हैं। वे चकित हो सोचने लगे कि मेरी माया से अचेत ग्वाल बाल बछड़े यहाँ कैसे। अपनी ज्ञान दृष्टि से देखा पूर्व के ग्वाल–बाल बछड़े तो मैंने अचेत कर छुपाकर रखा है फिर उतने ही वैसे ही यहाँ भगवान के साथ खेल रहे हैं। वे अपनी सम्पूर्ण ज्ञान–ध्यान शक्ति से इस मर्म का भेद नहीं जान पाये। वे अजन्मा होने पर भी अपनी ही माया से अपने–आप मोहित हो गये–

एवं सम्मोहयन् विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम्।
स्वयैव माययाजोऽपि स्वयमेव विमोहितः।।44।।

अ. 13 स्क. 10 पूर्वार्ध

ब्रह्मा जी स्तंभित हो पुतली की तरह काष्ठवत् खड़े थे। उनकी आँखें बन्द थीं। भगवान ने दया कर अपनी माया का परदा हटा दिया। तब ब्रह्मा जी ने दण्ड की भाँति गिर कर बालकृष्ण को नमस्कार किया। गद्गद् कण्ठ से स्तुति गान करते हुये बोले–परमात्मन्! आपका यह श्रीविग्रह भक्तों की अभिलाषा पूर्ण करने वाला है। कौन कहता है कि यह पंच भूतात्मक रचना है? यह तो अप्राकृत शुद्ध सत्वमय है। मैं या और कोई समाधि लगाकर भी इस विग्रह की महिमा को नहीं जान सकता। साक्षात् आपकी महिमा को कोई एकाग्रमन से भी कैसे जान

सकता है?

हे अच्युत! इस लोक में पहले भी अनेक योगी हो चुके हैं। जब उन्हें योगादि के द्वारा आपकी प्राप्ति न हुई, तब वे अपने समस्त कर्म आपके चरणों में समर्पित कर दिये। जिससे उन्हें आपकी भक्ति प्राप्त हुई। उस भक्ति से ही उन्हें आपका स्वरूप ज्ञान हुआ जिससे वे आपके परम पद को प्राप्त कर लिये।

पुरेह भूमन बहवोऽपि योगिन–
स्त्वदर्पितेहा निजकर्मलब्धया।
विनुध्य भक्त्यैव कथोपनीतया
प्रपेदिरेऽओऽच्युत ते गतिं पराम।।5।।

अ. 14, स्क. 10 पूर्वार्ध

ब्रह्मा जी ने प्रार्थना करते हुये कहा—आप! अनन्त परमात्मा योगेश्वर हैं। जब अपने योगमाया का विस्तार कर लीला करते हैं उस समय त्रिलोकी में ऐसा कोई नहीं जो जान सके।

को वेत्ति भूमन् भगवन् परमात्मन्
योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम्
क्व वा कथम् वा कति वा कदेति
विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम्।।21।।

अ. 14 स्क. 10 पूर्वार्ध

ब्रह्मा जी ने नाना प्रकार से स्तुति करते हुये एक मर्म की बात कही है—जो गुरु—रूप सूर्य से तत्व ज्ञान रूप दिव्य दृष्टि प्राप्त करके उससे आपको अपने स्वरूप के रूप में साक्षात्कार कर लेते हैं, वे इस झूठे संसार—सागर को पार कर जाते हैं।

ब्रह्मा जी ने बछड़ों और ग्वाल बालों को पहले ही यथा स्थान पहुँचा दिया था। उधर भगवान कृष्ण से आज्ञा लेकर ब्रह्मा जी अपने लोक गये। इधर एकाकी कृष्ण यमुना तट पर अपने सखाओ के पास लौट आये। यद्यपि इस घटना में एक वर्ष व्यतीत होने के बाद भी ग्वाल बालों को इसका कोई भान न रहा। परीक्षित ! भगवान् के पाँचवे वर्ष की लीला ग्वाल बालों ने घर पहुँच कर छठे वर्ष में कही इसका रहस्य मैंने तुम्हें बता दिया।

श्री राम लाल प्रभवे नमः

श्रीमती रूकमणी देवी की प्राण रक्षा

जगदीश राए बंसल ''अधम'' 9212434003

त्रय जग पावन, ब्रह्माण्ड नायक, योग योगेश्वर, महा प्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं हृदय सम्राट सिद्ध योगाधिपति सद्‌गुरु देव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपने लाड़ले बच्चों पर हर समय, हर जगह कोई भी विपत्ति आने पर अपनी कृपा के बादल बरसाते ही रहते हैं। भले ही हम उस आपत्ति के समय गुरुदेव को याद कर पाएँ अथवा चूक जाएँ। ये कृपायें चाहे अग्नि की लपटों से बचाने की हों या जल धारा की गहराई में डूबने से बचाने की हों या उग्रवाद के चंगुल से छुड़ाने की हों अथवा किसी भयानक दुर्घटना से प्राण बचाने आदि की हों। योग विभूतियों से सिद्ध एवं ऋद्धि-सिद्धि के स्वामी गुरुदेव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज अपने कृपा पात्र बच्चों की सहायतार्थ तरह-तरह की वेशभूषा धारण कर मौके पर पहुँच जाते हैं। कहीं न्यायधीश बन कर, कहीं सर्जन बन कर, कहीं फकीर बन कर, कहीं ग्रामीण बन कर, कहीं बाबा जी बन कर, कहीं परम् ब्रह्म विश्वनाथ बनकर अथवा कहीं-कहीं अन्य रूप धारण कर हर समस्या से रक्षा करते रहते हैं।

इसी प्रकार का एक कृपा प्रसंग आराध्य देव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के विशेष कृपा पात्र और हमारे आदरणीय गुरुभाई अट्ठावन वर्षीय डॉ. राजेन्द्र सिंह पाल जो वर्तमान में सीनियर सी. एम. ओ. (केन्द्रीय) के पद पर कार्यरत हैं, ने बतलाया कि मेरी भार्या 47 वर्षीय श्रीमति रुकमणी देवी (अध्यापिका) स्कूल कार्य क्रमानुसार दिनांक 26 दिसम्बर 2016 को स्कूल के बच्चों को लेकर दिल्ली से मैसूर के टूर पर जाने के लिए अपने निवास स्थान द्वारका से कैब द्वारा निजामुद्दीन रेलवे स्टेशन तक रात्रि लगभग तीन बजे अपने प्रथम चरण की यात्रा प्रारम्भ किए। तीन छात्रायें तो मैडम जी के साथ कैब में बैठ लीं शेष छात्रायें सीधे रेलवे स्टे. के निर्धारित स्थान पर पहुँचने का कार्यक्रम बनाया गया था। संयोग कुछ ऐसा बना कि श्रीमति जी वाली कैब ने जैसे ही द्वारका के सैक्टर एक में प्रवेश किया, अचानक तीव्र गति से आए एक ट्रक ने कैब में जोरदार टक्कर दे मारी। दुर्घटना स्थल पर इस भयावह धमाके को देखते एक लड़का नजर आया था। आप ही आंकलन कर सकते हैं कि दिसम्बर की ठिठुरती शयन रात्रि के सन्नाटे में वह लड़का कौन हो सकता है? उस प्रत्यक्षानुभवी पैगांबरी लड़के ने

अविलम्ब पुलिस को सूचित कर दिया। अहेतुकी कृपा से पुलिस कहीं निकटतम ही रही होगी जो पलक झपकते ही पहुँच गई। पुलिस ने कारुणिक दृश्य देखते ही तुरन्त फायर ब्रिगेड को बुलाया और गाड़ी को काट कर चारों सवारियों को बाहर निकाला। मैडम जी अचेतावस्था में थीं। आपको बताता चलूँ कि मैडम जी का जबड़ा टूट गया था, 7–8 टाँके आए थे। जैसे–जैसे टेस्ट होते गए गर्दन में कई फ्रैक्चर मिले थे अतः मुँह टेढ़ा हो गया श्वास लेने में परेशानी .. .. इत्यादि अवसाद कराह रहे थे। रिद्धि–सिद्धि के स्वामी का ऐसा जादू चला कि दुर्घटना समय से तीस मिनट अवधि काल में ही पुलिस पेसन्ट को लेकर विद्युत गति से दीन दयाल अस्पताल पहुँच चुकी थी। अस्पताल में प्रतीक्षित चिकित्सक अविलम्ब उपचार में जुट गए।

इधर मैडम जी के द्वारा यात्रा कदम बढ़ाते ही मैं लाईट–दरवाजे बन्द करके रात्रि विश्राम हेतु कम्बल तान कर अपने बिस्तर पर लेट गया। इसे भाग्य की विडम्बना ही कहिए कि मेरा मोबाइल कमरे के बरामदे में ही रह गया था। मेरे निद्रा मग्न होने से पहले ही मोबाइल की घण्टी दनदनाने लगी। संस्कारों का वेग कुछ ऐसा चला कि मैं अपना कम्बल छोड़ कर फोन सुनने के स्थान पर यही सोचता रहा कि काश! कोई मुझ पर एक कम्बल और डाल दे .... ..। मोबाइल की घण्टी रह–रह कर, निर्विघ्न बजती रही। अन्ततः जब मैं उठा तो उस समय कोई पाँच बजे का समय रहा होगा। मोबाइल जाँच किया तो नम्बर अनजाने ही लगे। हाँ एक नं. स्कूल के प्रिन्सिपल महोदय का मिला। मैंने उनसे सम्पर्क साधा तो प्रत्युत्तर में सहज स्वभाव से घटना के विषय में बतलाया। मैं अविलम्ब अस्पताल पहुँचा। श्रीमति जी बेहोश मगर पीड़ा की प्राकाष्ठा से चिल्ला रहीं थीं। उक्त दृश्य कथनी से परे की बात है। उपस्थित डॉ. टीम से मेरा परिचय हुआ तो उन्होंने अपनी असमर्थता से अवगत कराया कि अफसोस! हमारे पास आई. सी. यू. खाली नहीं है और सी. टी. स्कैन फेस थ्री डी टेस्ट भी यहाँ सम्भव नहीं है..... . इत्यादि कारणों से पेशैन्ट को भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) के ट्रामा सेन्टर में रैफर करना पड़ रहा है। मगर वेरी सौरी सर यहाँ कोई डॉक्टर नहीं जो पेशैन्ट के साथ एम्स तक जाए और जनाब न ही अम्बूलेन्स जो पेशैन्ट को ले कर जाए ....।

आड़े वक्त दिमाग, पाताल की परतें भी खोल डालता है,
बाँस का फूल बाँस को ही सुखा डालता है।।

समय की नजाकत के साथ मैंने श्री चरणों में मौन प्रार्थना की जो आशुतोष जी ने डंके की चोट जैसी राहत दी। कहते भी हैं कि

मिले हो धर्मराज ही जिन्हें गुरु रूप में।
गिर नहीं सकता वो विकारों के कूप में।।

पालनहार की लीला से उत्साहित हो कर मैंने स्वयं इनटैलिजैन्सी ब्यूरो से फौरन

अम्बुलेन्स बुलाई और डॉ. का कार्य भार सम्भाल कर पेशैन्ट के साथ जाने के लिए स्वयं को प्रस्तुत किया जो दीनदयाल अस्पताल अस्वीकार नहीं कर सका। हाँ डॉ. गुप्ता जी ने यह अवश्य सुझाया कि किन्हीं कारणों से ट्रामा सेन्टर में स्थान न मिले तो अविलम्ब यहीं वापिस ले आना, यह एक सीरियस केस है ....।

ख्याल बीमारी का नहीं जिन्दगी का होता है

ख्याल दवाई का नहीं इलाज का होता है।

दुआयें तो मिल जाती हैं मेहबानों से

यहाँ ख्याल जीवन दान का होता है।।

जैसे ही हम एम्स पहुँचे, अवर्णनीय शीघ्रता के साथ श्रीमति जी को इमरजेन्सी में एडमिट करा लिया और आई. सी. यू. में ट्रान्फर कर दिया। वहाँ उपस्थित डॉ. साहिब ने मुझे बतलाया कि पेशैन्ट की हालत सीरियस है, साँस लेने में तकलीफ हो रही है। साँस ट्यूब खुली नहीं है अतः ऑपरेशन द्वारा कण्ठ में छीद्र करना पड़ेगा जो खतरे से खाली नहीं है। मैं स्वयं सी. एम. ओ. होते हुए भी किंकर्तव्य–विमूढ़ावस्था में पहुँच गया फिर कुछ सम्भल कर सोचने को विवश हो गया कि सच में ही आनन्द का मार्ग कष्टों के चौराहे से ही होकर गुजरता है। गुरुदेव को मानसिक प्रणाम किया, गुरु मन्त्र किया फिर याद आया कि–

फिकर मत कर बावरे–मत कर मन में सोच।

गुरुवर के आधीन कर छोड़ सभी संकोच।।

अतः मैंने हृदय सम्राट के भरोसे डॉक्टरों को रिस्क लेने के लिए कण्ठ के ऑपरेशन की हाँ कर दी। इसी उहापोह के चलते मैंने अपने एक आत्मीय एवं अध्यात्मिक, अपने गुरुदेव के लाड़ले, मेरे भतीजे श्री हरेन्द्र सिंह पाल को चण्डीगढ़ कॉल किया कि आपकी चाची जी का एक्सीडेन्ट हो गया ...... अब एम्स में है .... सीरियस है–पीड़ा असहनीय है .... अभी–अभी कण्ठ का ऑपरेशन शुरू होने जा रहा है........ आप उसके लिए प्रार्थना .... वह बीच में ही कह उठा कि चाचा जी मैं इस समय एक बड़े मन्दिर में हूँ। प्रार्थना करके बैक कॉल करता हूँ। प्रत्युत्तर में हरेन्द्र सिंह ने बतलाया कि अंकल जी इस मन्दिर के पुजारी जी दैदीप्यमान योगी राज जी हैं। उन्होंने सहायतार्थ ध्यानानुभूति से बतलाया है कि वहाँ (एम्स में) उनके (चाची जी के) परम ब्रह्म विश्वनाथ जी (गुरु जी) विराजमान हैं। उनके होते मैं क्या प्रार्थना करूँ, क्या सहायता करूँ? .... इत्यादि।

चमत्कार, महान चमत्कार एम्स में विराजे विश्वनाथ जी की विभूति से कण्ठ का ऑपरेशन सफल हुआ। अब साँस लेने में कोई समस्या नहीं रही।

जब नौका चल रही गुरुवर की–

तो बल्ली की क्या जरूरत है?

अब अगली प्रातः जबड़े का ऑपरेशन होना था मगर अस्पताल में सीट खाली नहीं मिली। अपने गुरु जी के मर्म को कौन जान सकता है? हम कहते तो हैं कि जहाँ इष्ट होता है वहाँ अनिष्ट नहीं होता। यह भी कहते हैं कि–

जिसने तेरी मूर्त को दिल में बसा लिया।

सोई हुई नसीब को उसने जगा लिया।।

यहाँ गुरु जी के मर्म का अर्थ हुआ कि यदि ऑपरेशन हो जाता है तो प्रत्यक्ष खतरा था। क्योंकि बाद में दर्द के कारण जब गर्दन का अल्ट्रासाउण्ड एवं एम. आर. आई. किया गया तो नस कटने से रक्त जमा पाया अतः एनजियोग्राफी किया गया। न्यूरो सर्जन के अनुसार जबड़े के ऑपरेशन से पहले यह अनिवार्य था। अब तीन सप्ताह इन्तजार किया जाएगा।

तीन सप्ताह पश्चात् गर्दन का सिटी स्कैन फेस थ्री डी किया तो कई फ्रैक्चर एवं इन्फेक्शन पाए गए। अन्ततः सत्रह जनवरी 2017 को गर्दन एवं जबड़े का ऑपरेशन हुआ जो एम्स में पधारे गुरुदेव ने सफल किए। समय के साथ भाग्य विधाता जी ने हमारे भाग्य की करवट बदली। श्रीमति जी शनैः–शनैः कुछ–कुछ बोलने लगीं। फिर स्वतन्त्र विचरने लग गई और श्रीमान जी दिनांक सात फरवरी 2017 को हमारा एम्स से प्रस्थान आदेश हो गया।

बोलिए सद्गुरु देव भगवान की जय

लगभग डेढ़ माह पश्चात् घर लौटने के उपलक्ष्य में हम लौकिक अथवा पारलौकिक आनन्द धारा में घुल–मिल भी नहीं पाए थे कि एक और कलिष्ट संस्कार ने हमको आन दबोचा। हुआ यूं कि श्रीमति जी को दो लड़के दिखाई देने लगे। वे कहते थे कि आओ चलो ..... हमारे साथ चलो .... आओ .... चलो .... इत्यादि। मैंने श्रीमती जी से कहा कि–

हमारे प्रभु जी हैं बड़े अलबेले।

वे करते हैं दूर झमेले।।

अतः आप गुरु मन्त्र करें और जीवन चक्र को चलाने वाले श्री प्रभु जी से चिमटा या छड़ी माँग लें। जब वे लड़के दिखाई दें तो दे दनादन–दे दनादन कर देना।

तेरा प्रयास एक दम सफल होगा

हिम्मत कर इरादा पूरा होगा।

जिनके संग गुरु बैठे हैं

उनको कभी ना अन्धेरा होगा।।

आ गई लहर शिवा के मन में—एक रात्रि वेला में श्रीमति जी को मैंने कुछ बुदबुदाते सुना कि मारूँगी—चिमटा ....। यह सुनकर मैंने शरणागत वत्सल को प्रणाम किया और मन ही मन मुस्काया कि अहेतू की कृपा, संकट मोचक ने चिमटा दे दिया। और चिमटा दे दिया तो प्राण रक्षा भी हो गई। तदुपरान्त वे लड़के दिखाई नहीं दिए।

धन्य है ऐसे अखिल ब्रह्माण्ड नायक जगत नियन्ता महा प्रभु श्री राम लाल जी महाराज एवं प्रात: स्मरणीय अनन्त विभूषित गुरुदेव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज जो अपने बच्चों के लिए कल्प वृक्ष के समान हैं। ऐसे सिद्धों के सरदारों के श्री चरणों में हमारा कोटि—कोटि साष्टांग प्रणाम।

भजो रे! प्रभु रामलाल सुखदाई

श्रीमती कृष्णा वर्मा, शामली

टेक—

भजो रे! प्रभुरामलाल सुखदाई।।

दीन अधम तारन को जिसने सिद्ध गुफा दरसाई।
तीन काल के हैं जो ज्ञाता हर घट बीच समाई।।
अगम अगोचर लीला जिनकी देती नहीं दिखाई।
नाम लिये हरि पाप को मेटे प्रीति बड़ी फलदाई।
कितने पापी मुक्त हुए हैं प्रभु चरणन में आई।
मैंडू मल्लाह रामरती सम भव सागर तर जाई।
दीनानाथ दया के सागर कृपा सिन्धु बलदाई।
भक्तन काज लाज हित दौड़े करते सदा सहाई।।
शुद्ध भाव से शरण लो इनकी क्यों रहे समय गँवाई।
योग के सूरज 'चन्द्रमोहन जी, दूर करे कठिनाई।।

मेरे गुरुदेव

(प्रोफेसर वीरेन्द्र सिंह वर्मा, एम. एस–सी. एजी.)
अध्यक्ष कृषि विभाग, रा. कि. डिग्री कॉलेज, शामली

चरणाविन्द गुरुदेव नमामि, प्रभो पाहि आपन्नमाशीष शंभो, का मंगल नाद आश्रम में गूँज रहा था। भक्त मंडल आत्म विभोर हो रहा था कोई शंकर भगवान के ताण्डव नृत्य की मुद्रा में था तो कोई अखिल लोक पावन जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण की मुद्रा बनाकर वंशी धारण किये था और दूसरे अनेक साधक दिव्य मस्ती को पाकर भाव विभोर हो झूम कर नाच रहे थे। ये साधकगण अपने शरीरों का ज्ञान भूल कर ध्यानस्थ अवस्था में पहुँच रहे थे। बच्चे–युवा वृद्ध स्त्री पुरुष इस प्रकार गिर रहे थे जैसे वृक्ष से पके फल गिर जाते हैं। इनके मुख मण्डलों पर दिव्य तेज एवं गाम्भीर्य की झलक स्पष्ट थी। ऐसा दिव्य दृश्य इससे पूर्व मैंने कभी नहीं देखा था। यह राम नवमी का पुनीत पर्व था और मैं करुणानिधान योगेश्वर श्री गुरुदेव जी से योग में दीक्षा प्राप्त करने परम पावन सिद्ध धाम सँवाई आश्रम गया हुआ था। अभी मैंने दीक्षा नहीं ली थी और जो कुछ भव्य एवं दिव्य दृश्य पूर्व की रात्रि को देखा था इसका गूढ़ रहस्य न समझ सका। जानने की मन में उत्सुकता प्रबल बनी। ज्ञात हुआ कि गुरुदेव जी गुफा के अन्दर दीक्षा देने के लिये विराजमान हो गये हैं दीक्षा देने की तैयारी की। भारी संख्या में दीक्षार्थी पंक्तिबद्ध होकर सिद्ध गुफा द्वार के बाहर खड़े हो गये। अपने नम्बर पर मैं भी पावन गुफा के अन्दर पहुँचा जहाँ योग युक्त हुये सिद्ध शिरोमणी श्री गुरुदेव जी महाराज विराजमान थे। गुरुदेव के सन्मुख बैठ गया। मुझे गुरुदेव का शरीर चिन्मय, उनकी वाणी में विशेष आकर्षण तथा उनके नेत्रों में दिव्य तेज दीप्ति का स्पष्ट आभास हुआ। मेरा शरीर रोमांचित हो उठा। क्षण भर में ही शरीर की सुध–बुध भी न रही। जब होश आया तो अपने को श्री गुरुदेव के चरण कमलों में लिपटा पाया। गुरुदेव ने अतीव प्यार से मुझे उठाकर अपने वक्ष से लगा लिया। मुझे स्पष्ट स्पर्श अनुभव हुआ कि गुरुदेव के चिन्मय शरीर से चन्द्रमा की मधुर शीतलता का स्फुरण हो रहा है। मन में अतीव आह्लाद उत्पन्न हुआ जिसका एकमात्र कारण था परम पवित्र सिद्ध धाम पर पूर्ण सिद्ध योग युक्त गुरुदेव जी की उपस्थिति जिसके कारण वातावरण के अणु परमाणु अलौकिक दिव्यता धारण किये हुये थे। गुरुदेव जी ने विधिवत् दीक्षा दी। मुझे शक्ति पात का पुस्तक ज्ञान तो पहले था परन्तु अनुभव की प्रत्यक्ष प्रतीति श्री गुरुदेव जी के

चरणारविन्द में शरण मिलने पर ही हुई।

मैं अपनी बाल्यावस्था से ही अनेक साधु महात्माओं के सम्पर्क में आता रहा हूँ। इन में से कई एक तो बड़े चमत्कारिक भी माने जाते थे। उन पर मेरी श्रद्धा भी रही है। आनन्द कन्द श्रीगुरुदेव जी की शरण में आने पर सोचा करता हूँ कि चमत्कारिक होते हुये भी ये महात्मन 'योग' शब्द का प्रयोग प्रायः नहीं करते थे। श्रीगुरुदेव के परम अनुग्रह से अब मैं सोच सकता हूँ कि ये महात्मन कुछ छोटी सिद्धियों के ही अधिकारी थे जिनके आधार पर वे लोगों को यदा-कदा चमत्कार दिखाया करते थे। इन्हीं महात्माओं में से एक महात्मा 'अवधूत' नाम से जाने जाते हैं। कहते हैं महात्मा बड़ी विचित्र प्रकृति के होते हैं सो ये भी इसका अपवाद नहीं हैं। कभी शीश पर जटायें बढ़ा लेते हैं, कभी मुड़ा लेते हैं, कभी हुक्के का शौक आरम्भ कर देते हैं तो कभी भंग का। इनका शरीर तपस्या का प्रतीक है। चमत्कारिक होने के कारण बड़े-बड़े श्रीमान अवधूत जी का सम्मान करते हैं। मेरा अवधूत जी से काफी पुराना सम्पर्क है इसलिये वे मुझे भी भली भांति जानते पहचानते हैं। इस बार जब मुझे मिले तो उनसे कहा कि अब तो मैंने योग मार्ग में दीक्षा प्राप्त कर ली है। कहने लगे किस के चक्कर में फंस गये। मैंने कहा महाराज आपको भी पूछने की आवश्यकता है? इतना तो आप स्वयम् ही जान सकते हैं कि मेरे गुरुदेव कौन हैं और वे कैसे हैं। तब हँस कर कहने लगे अच्छा बतलाते हैं। जो कुछ उन्होंने बतलाया वह संक्षेप में इस प्रकार है तुम्हारे गुरुदेव का शुभ नाम श्री 'चन्द्रमोहन' है। वे ऋतम्भरा प्रज्ञाप्राप्त समर्थ योगिराज हैं। महासिद्ध श्रेणी के हैं। उनके दृष्टिपात से मनुष्य निहाल होकर परम कल्याण को प्राप्त हो सकता है। वे रूहानी ताकत के भंडार हैं। हर समय उनके शरीर वाणी एवं दृष्टि द्वारा अलौकिक दिव्य तेज की किरणें निकला करती हैं जिनका प्रभाव क्षेत्र अपरिमित है। तुम्हें यह सब कुछ अभी दिखाई नहीं देता है। तुम धन्य भाग्य हो जो श्री हनुमान जी की कृपा से ऐसे महापुरुष सद्गुरुदेव के रूप में मिले हैं।'' श्री अवधूत महाराज के मुख से अपने गुरुदेव की महिमा सुन कर मन को अतीव आह्लाद हुआ और श्री सिद्ध गुफा संवाई आश्रम वाले दिव्य दृश्य का रहस्य समझ पाया कि वह सब श्रीसद्गुरुदेव जी द्वारा जन समूह पर की गई 'शक्तिपात' का प्रभाव था जो व्यक्तियों के संस्कारों के अनुसार साक्षात फलीभूत हो रहा था।

आज मानव जाति का दुर्भाग्य पूर्ण काल है। जड़वाद चरम शिखर पर है। मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन-नश्वर वस्तुओं की ऊपरी तड़क-भड़क खाने पीने तथा चैन करने के निमित्त ईश्वर है, इन्द्रियजन्य सुख ही उसकी शान्ति एवं सम्पूर्णता का लक्ष्य है। आज संसार ऐसे

पाखंडी गुरुओं से भरा पड़ा है जो केवल अपनी वाक् विद्वता के आधार पर ही भोले भाले लोगों से धर्म के नाम पर पूजा कराया करते है। वास्तव में ऐसे लोग समाज के ऊपर बोझ हैं। यह बात तो सभी जानते हैं कि सत्य बोलना चाहिए परन्तु सत्य में संयम करने से जो रूहानी शक्ति मनुष्य में आती है क्या वह इन पाखंडियो मे है? उन्होंने तो केवल शास्त्र अध्ययन के आधार पर वाक् विद्वता प्राप्त की है, शास्त्र अध्ययन को उन्होंने पचाया नही है, उसके ज्ञान की उन्हें डकार नहीं आई है। मानव जाति के ऐसे दुर्भाग्य पूर्ण काल में उसे पतन से बचाने के लिए ऐसी महान आत्माओं का जन्म हुआ करता है जो लोक कल्याण के लिये अपने विचारों कर्मो तथा आदर्शो द्वारा 'जड़वाद' और 'ईश्वर वाद' में समन्वय स्थापित किया करते हैं। ये महान विभूतियाँ संसार के इन्द्रिय जन्य सुखो एवं माया के क्षुद्र पाश को ज्ञान रूपी तलवार से काटकर मानव कल्याण के लिये समाज मे आध्यात्मिक शक्ति प्रवाहित किया करते हैं। ये दिव्य विभूतियाँ 'दैवी संपत' की खान होती हैं। धर्म वृत्ति, निर्भयता, ज्ञान, समता, इन्द्रियदमन, तप, सरलता, अहिंसा सत्य, अकाम, अक्रोध, त्याग, शान्ति दया, मर्यादा, तेज, क्षमा, धैर्य, निरभिमानता शुद्धि, आदि जितने भी देव गुण शास्त्रों में कहे गये हैं इन विभूतियों में पाये जाते हैं। ऐसी ही महान विभूतियों में से 'मेरे गुरुदेव' हैं योगियों के मंडल में वेदेव वन्दित महासिद्ध हैं। सूर्य के समान चमक रहे हैं। कितना ही जान लें फिर भी इस अनन्त योगिराज के विषय में बहुत कुछ जानना शेष बच रहेगा ऐसा मुझे लगता है। अपनी बाल्यावस्था में ही मेरे गुरुदेव खेल–खेल में ही समाधि लगाते और चित्त निर्माण किया करते थे। उनका सम्पूर्ण जीवन तपोमय एवं उज्जवल रहा है। परमात्मा हजार फनों वाले शेष नाग पर सोते हुए भी जिस प्रकार शांत एवं मृदु रहते हैं मेरे गुरुदेव हजारों कर्म करते हुये भी रत्तीभर क्षोभ तरंग अपने मानस सरोवर में नहीं उठने देते। न जाने कितने भक्तो को उनकी करुण कृपा से समाधि लाभ प्राप्त हुआ है, कितनों की उच्च ध्यान स्थितियाँ परिपक्व होती जा रही हैं और कितनों को योग विद्या का गूढ़ रहस्य पाकर प्रकाश मिल रहा है। जो उनके सम्पर्क में आता है। खिंचता ही चला जाता है।

अपने प्रवचनों में प्रायः मेरे गुरुदेव बतलाया करते हैं कि दम्भ, क्रोध, काम तथा अज्ञान के पर्वत रास्ते में अड़े हैं और नारायण उनके उस पार हैं। आज बहुत कम लोगों को सूक्ष्म जगत की क्रियाओं के जानने की इच्छा है और जिनको है उनमें से अधिकतर यह चाहते हैं कि बिना प्रयास और परिश्रम किये सब कुछ प्राप्त हो जाय। पर ऐसा होने वाला नहीं है। पहले मनुष्य को अपने अन्दर मोर्चा जमाये दुर्गुण रूपी सेना को नष्ट करना होगा। जो इस कठोर संघर्ष

को जीत लेगा नारायण प्राप्ति का अधिकारी होगा। इसी लिये मेरे गुरुदेव योग के विद्यार्थियों को यह उपदेश दिया करते है कि उनके जीवन की समस्त क्रियायें सेवामय श्रद्धामय तथा ज्ञानमय होनी चाहिए, आत्म शोधन के लिये ज्ञान यदि साबुन का काम करता है तो श्रद्धा पानी का। दोनों के मेल से ही शोधन सम्भव है। बहुत कुछ सुनकर अथवा पढ़कर जिनकी बुद्धि चक्कर में पड़ गई है और मन की एकाग्रता के स्थान पर अनेकाग्रता अथवा शून्यता रहती है उन्हें चाहिए कि वे पढ़ना बन्द करके आध्यात्मिक गुरुओं की खोज करें, उनकी शरण लें। वहाँ उन्हें जीवन ग्रन्थ पढ़ने को मिलेगा। वहाँ का मौन व्याख्यान सुनकर वे छिन्न संशय हो जायेंगे। योगशास्त्र ने सूक्ष्म के वे नियम ढूँढ निकाले है जो भौतिक नियमों से अतीत है और समस्त शिक्षा का रहस्य हैं। यह ऐसी विद्या है जिसके जानने से सब कुछ जान लिया जाता है। योगाग्नि अवशेष पाप पंजर को शीघ्र ही जला देती है योग ही पर तप है योग ही ज्ञान और धर्म का लक्षण है। अतः प्रयत्न के साथ योग का अभ्यास अवश्य ही करना चाहिए।

जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक गुरुदेव के द्वारा निर्दिष्ट विधि से योग का अभ्यास करते हैं उनका मन शक्ति वाला बन जाया करता है एवं लौकिक कठिनाइयाँ संकल्प मात्र से ही दूर हो जाया करती हैं। अपने प्रयत्नशील श्रद्धालु बालकों पर गुरुदेव जी की सतत् करुणा कृपा रहा करती है। मैं ऐसे अनेक भाई बहनों को जानता हूँ जिनको अनेक रूपों में करुणानिधि कल्याणघन गुरुदेव की कृपा प्राप्त हुई है। हालाँकि गुरुदेव की करुण कृपा के दृष्टांत असंख्य हैं जिनका समावेश इस छोटे से लेख में करना वह भी मुझ जैसे अल्प बुद्धि के लिये बिल्कुल असम्भव है फिर भी जिज्ञासु भाईयों की सेवा में एक–दो घटनाओं का उल्लेख करने का मन में संकल्प बन आया है। कार्तिक मास में आनन्द कन्द लोक पावन श्री गुरुदेव जी का योग प्रचार कार्य–क्रम चंडीगढ़ में चल रहा था। मैं भी चार पाँच दिन श्री गुरुदेव जी के चरणारविन्द में वहाँ पर रहा और गुरुदेव जी की आज्ञा पाकर बहन राजकुमारी जी के घर पर निवास किया। मैंने देखा कि बहन जी का कृपा सिन्धु के चरण कमलों में अगाध प्रेम है। मैंने बहिन जी से पूछा कि किस प्रकार तुम्हें इन श्री चरणों में इतना आकर्षण उत्पन्न हुआ। इतना कहना था कि बहन जी प्रभु प्रेम में भाव विभोर हो उठी। बड़े प्रेम से मुझे समझाने लगी कि करुणार्णव श्री गुरुदेव की कृपा का कहाँ तक वर्णन करुँ। वे दया निधि हर समय मेरे परिवार के रखवाले हैं। अपनी बीमारी का जिक्र करते हुये बहिन जी ने बतलाया कि मैं वर्षों से घातक शारीरिक रोग की वेदना पाते–पाते इतनी दुर्बल हो गई थी कि हाथ पैर हिलाना तक सम्भव नहीं था। डॉक्टरों को आपरेशन के अलावा और कोई उपचार दिखाई न दिया। अन्तिम परीक्षण के

समय आपरेशन होना निश्चित हो गया। इस जीवन–मृत्यु के संघर्ष के समय अचानक मुझे पतित पावन श्री गुरुदेव जी के दर्शन हुये और कहने लगे राजकुमारी तू घबरा मत, तेरा आपरेशन नहीं होगा। ले हम तुझे अभी अच्छा कर देते हैं और तुझे तेरे पति से मिलाये देते हैं। उधर डॉक्टरों का दिमाग पलटा और स्वयम् ही उन्होंने ऑपरेशन करने की योजना समाप्त कर ली। उस दिन के पश्चात् मेरा स्वास्थ्य तीव्र गति से सुधरने लगा और अब मैं उन योगेश्वर की कृपा से पूर्ण रूपेण स्वस्थ हूँ। श्री गुरुदेव जी के योग प्रचार के दूसरे दिन की बात है। बहिन जी दिन भर घरेलू कार्यों से अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण लगभग आठ बजे ही निद्राग्रस्त हो गई और श्री प्रभु जी की सामूहिक आरती में सम्मलित न हो सकी। अचानक बहन जी के मुँह पर जल के छींटे पड़े और उनकी निद्रा टूट गई। तुरन्त दौड़ी हुई वहाँ पर पहुँची जहाँ भक्त समुदाय सामूहिक आरती में मस्त था। बहिन जी के आने के थोड़ी देर पूर्व ही तो श्री गुरुदेव जी ने श्री प्रभु चरणामृत छिड़क कर जन समूह को शीतल किया था। बाद में बहिन जी लगभग पूरी रात भर ध्यानस्त रहीं। आरती के समय बच्चों युवा एवं वृद्ध स्त्री पुरुषों की जो ध्यान स्थितियाँ बनती थीं और जिन्हें मैंने स्वयं देखा उन सब का वर्णन करूँगा तो लेख का आकार अधिक बढ़ जायेगा परन्तु बहन मनोरमा के विषय में थोड़ा सा उल्लेख करने की मन में उत्सुकता हुई है। बहिन मनोरमा प्रोफेसर सूद की धर्मपत्नी हैं। वे एम. ए. तक शिक्षित हैं। चंडीगढ़ के गुरु भाइयों ने मुझे बतलाया था कि पहले इस प्रकार के सत्संगों को बहन जी ढोंग मानती थीं और अपने पति देव का गुरु प्रेम उन्हें अच्छा नहीं लगता था इसलिए उनका विरोध किया करती थीं। पहले कुछ भी रहा हो लेकिन जब मैंने उन्हें देखा तो वे एक आदर्श गुरु–शिष्य के रूप में दिखाई दी। उनके हृदय में श्री करुणा निधि के प्रति अपार प्रेम एवं श्रद्धा है। बहन जी को नित्य नियम से सत्संग में आते देखा। सत्संग में आते ही बहन जी ध्यानस्थ हो जाती थीं। ध्यानावस्था में उनकी आँखें मुँदी रहती थीं। आश्चर्य की बात तो यह हुआ करती थी कि बहन जी किसी भी स्थान पर बैठी हों मुंदी आँखों से जहाँ पर श्री गुरुदेव जी विराजमान होते वहाँ पहुँचती थीं और बीच में बैठे हुए किसी व्यक्ति को छूती तक नहीं थीं। जहाँ पर भीड़ के कारण पैर रखने की जगह न होती तो बहन जी लम्बी छलांग लगाकर श्री गुरुदेव के चरण कमलों तक पहुँचती थीं। इस घटना से यह स्पष्ट है कि बाहर के नेत्र गोलक बन्द रहते हुए भी बहिन मनोरमा को सब कुछ दिखाई देता था। यही तृतीय नेत्र अथवा दिव्य चक्षु का प्रभाव होता है जो गुरुदेव की परम अनुकम्पा से प्राप्त हुआ करता है. इस घटना को देख कर अनेक नास्तिक विद्वानों ने श्री गुरुदेव के चरणों में सिर झुकाया और उनकी भूरि भूरि प्रशंसा की। हम जैसे अल्पज्ञ उनकी महिमा का क्या बखान कर सकते हैं उन करुणानिधि को वही जान

सकता है जिसे वे स्वयं जानते हैं। मेरे गुरुदेव के सत्संगों में निरन्तर शक्तिपात हुआ करता है जो पतित मानव के कल्याण का कारण हुआ करता है।

मेरे गुरुदेव ऐसे हैं जिनके संकल्प कभी असत्य नहीं होते। यह खूबी ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त संतों में मिलती है। गुरुदेव से सम्बन्धित इस प्रकार की अनेक घटनायें हैं जिनमें से एक घटना का यहाँ पर उल्लेख करना शक्ति की ओर संकेत मात्र करने के लिए पर्याप्त होगा। चार अप्रैल 1969 को गुरुदेव शामली पधारे थे। आगामी कार्यक्रम के विषय में चर्चा चली तो गुरुदेव महाराज ने बतलाया कि 9 तारीख को सहारनपुर पहुंच कर 'अमृतसर–हावड़ा मेल' पकड़ेंगे और 'मच्छीवाड़ा' पहुँचेंगे। इस पर एक गुरुभाई ने कहा कि महाराज जी यह ट्रेन तो सहारनपुर से रात्री के डेढ़ बजे के लगभग छूटती है और इस गाड़ी से प्रोग्राम बनाने में तो आपको रात भर सोना नहीं मिलेगा। मुझे भलीभाँति याद है कि उस भाई ने श्री गुरुदेव जी से इस गाड़ी से प्रोग्राम न बनाने का आग्रह किया। अपने प्यारे बालक के प्रेम भरे ह्दय को परख कर गुरुदेव बोले क्या उस दिन यह गाड़ी देर से नहीं जा सकती? तुम चिन्ता न करो हम प्रातःकालीन क्रियाओं से निवृत्त होकर 5 बजे स्टेशन पर पहुँचेंगे। गाड़ी हमें फिर भी मिल सकती है। इधर मेरे मन में गुरुदेव द्वारा की गई इस भविष्यवाणी की सत्यता का निश्चय करने की इच्छा हुई और उसी दिन मैंने स्टेशन मास्टर सहारनपुर को एक जवाबी पत्र लिखा जिसमें उससे प्रार्थना की थी कि वे 9 तारीख को उक्त गाड़ी का सहारनपुर से छूटने का समय लिख भेजें। अपने कई साथियों को भी मैंने उसी दिन इस पत्र डालने के विषय में सूचना दे दी। कई दिन की उत्सुकतापूर्ण प्रतीक्षा के पश्चात् 14 तारीख को स्टेशन मास्टर का जवाब मिला जिसमें लिखा था कि उक्त दिन यह गाड़ी रोजाना के नियत समय से साढ़े तीन घण्टे से अधिक लेट आई और इतनी ही देर से छूटी। गाड़ी स्टेशन से सुबह के सवा पाँच बजे के पश्चात् छूटी थी।

श्री गुरुदेव जी का सम्पूर्ण जीवन योग प्रचार एवं लोक–कल्याण के लिए समर्पित है। देश के कोने–कोने में उन्होंने योग की धूम मचाई है। यह योग सनानी लाखों पतित व्यक्तियों के कल्याण का हेतु है, असंख्य लोगों को यौगिक साधनों तथा 'जीवन तत्व साधन' द्वारा अरोग्य प्रधान कर रहे हैं। प्रवचनों के अतिरिक्त जन साधारण तक अपने विचार पहुँचाने के लिये गुरुदेव 'सिद्धयोग' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन कर रहे हैं जिससे आध्यात्मिक विषयों पर लिखे गये लेखों द्वारा योग सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाता है। गुरुदेव की 'आठ योगी', 'समाधिस्थ योगिनियाँ', 'ब्रह्मचारी गोपालानन्द', 'स्वामी मुलखराज', 'संवाई के चमत्कार चरित्र', आदि पुस्तकें हैं जो योग के जिज्ञासुओं के लिये सब प्रकार से कल्याणकारी

है। जो इन पुस्तकों को श्रद्धापूर्वक मन लगाकर पढ़ेंगे और पचायेंगे उनकी योग प्रवृत्ति अवश्यमेव बढ़ेगी।

गुरुदेव प्रायः कहा करते हैं कि मनुष्य बचपन खेल कूद में खो देता है, जवानी विषयों के चिन्तन और भोग में व्यतीत कर देता है। और जब वृद्ध हो जाता है तब शरीर साथ नहीं देता। इसलिये जब तक मौत की घड़ियाँ दूर हैं और शरीर स्वस्थ है मनुष्य को चाहिए कि सधर्म पूर्वक योग का अभ्यास करे अन्यथा कोरा इन्द्रियों का गुलाम बना रहेगा।

प्रयत्न करते रहने पर सफलता मिलती ही है

निर्विकल्प समाधि की साधना में सफलता न मिली तो महर्षि उद्दालक बड़े निराश हुये असफल होकर जीने की अपेक्षा मरना अच्छा है यह विचार कर वे निराहार रहकर शरीर सुखाने लगे। वृक्ष पर एक वीरुध नाम का तोता रहता था उसने संतप्त और सजल नेत्रों से ऋषि की ओर देख कर कहा कि भगवान यह शरीर तो मरणधर्मा है ही इसे यों सुखाने में पुरुषार्थ क्या हुआ अमृतत्व की प्राप्ति का प्रयास ही तो मनुष्य का सच्चा पुरुषार्थ है। बार बार प्रयत्न करने वाले और असफलताओं से खिन्न न होने वाले ही लक्ष्य प्राप्त करते हैं क्या आपको यह विदित नहीं। शुक की बात महर्षि के हृदय में प्रवेश कर गई। अपने प्रयत्न फिर से प्रारम्भ कर दिये जिससे उन्हें निर्विकल्प समाधि की अवस्था प्राप्त हो गई।

मनुष्य श्रेष्ठ या निकृष्ट

एक सभा में वाद–विवाद चल रहा था। एक पक्ष कहता था कि मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है क्योंकि वह सभी जीवधारियों को वश में कर लेता है। दूसरा पक्ष कहता था कि मनुष्य कुत्ते से भी गया बीता है क्योंकि इसमें असंयम की प्रवृत्ति है। निर्णय न निकल रहा था। विवाद बढ़ता ही जाता था। एक ज्ञानी उधर से जा रहे थे सर्व सम्मति से उनकी सम्मति लेना तय हुआ। ज्ञानी ने दोनों पक्षों की बात सुनी और बोले भाई मनुष्य जब तक सत्कर्म करता है तब तक वह सर्वश्रेष्ठ है किन्तु जब वह दुष्कर्म करने लगता है तभी वह नीच बन जाता है उनके उत्तर से दोनों पक्ष सन्तुष्ट हो गये।

योग में गुरु की अपेक्षा

(श्री डॉ. ऋषिराम शर्मा गणित विभाग)
--काशी हिन्दू विश्वविद्यालय--

शब्दों में श्री सद्‌गुरु भगवान के स्वरूप की महिमा की अभिव्यक्ति संभव नहीं है क्योंकि वह तो परमात्मा के भी प्रणम्य तथा अनन्त स्वरूप हैं। जिस प्रकार गूंगा व्यक्ति मीठे फल का रसास्वादन कर आनन्द में मग्न तो हो जाता है किन्तु उसका वर्णन नहीं कर सकता उसी प्रकार गुरु-कृपा प्राप्त भाग्यवान पुरुष योगामृत का रसास्वादन कर अन्दर ही अन्दर सद्गुरु-चरणों के प्रेम में विभोर तो रहता है किन्तु उसकी अभिव्यक्ति करने में अपने को सर्वथा असमर्थ पाता है। जब-जब वह यह सोचता है कि मुझ पर मेरे गुरु जी कितने कृपालु हो गये हैं तब-तब वह उनकी महिमा का वर्णन करना तो चाहता है किन्तु अवाक् रह जाता है। बस एक नमस्कार शब्द ही उसके पास रहता है और वही उसके मुख से स्वतः निकल पड़ता है। वह मन की वीणा, उठाकर गाने लगता है-

अखण्डमण्लाकारं व्याप्तं येन चराचरं
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः।
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरु साक्षात्महेश्वरः
गुरुरेकं परम ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानांजन शलाकया
चक्षु रुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः।

अर्थात् जिन गुरुदेव ने मुझे सर्वव्यापी अखण्डमण्डलाकार स्वरूप का साक्षात्कार करा दिया उनको मेरा नमस्कार है। जो गुरुदेव ब्रह्मा, विष्णु और शिव के विशुद्ध स्वरूप हैं उनको मेरा नमस्कार है। जिन गुरुदेव ने मायावी अन्धकार अज्ञान से अन्धी हुई मेरी आँखों में ज्ञान रूपी अंजन लगाकर ज्योति ला दी अर्थात् आन्तरिक योग-दृष्टि का प्रकाश दे दिया उन गुरुदेव को मेरा नमस्कार है।

'गुरु' शब्द का अर्थ है कि जो माया-जनित अज्ञानान्धकार का नाश कर योग जनित ज्ञान का प्रकाश करा दे। अर्थात् जिनकी कृपा से अन्तर अनुभूतियों का प्रकाश होने लगे। बिना गुरु की कृपा के किसी को योग सिद्धि नहीं होती। भगवान सदाशिव जी ने भी नामदेव को

उपदेश करते हुये अमनस्क खण्ड में कहा है कि–

वेदान्ततर्कोक्ति मिरागमैश्च
नानाविधैः शास्त्र कदम्ब कैश्च
दानाघ्यिमिः सत्करणैर्नम्यं
श्चिंतामणि हर्येकगुरु–विहाय।।

अर्थात् तत्ववेत्ता गुरु के बिना केवल वेदान्त तर्क मीमांसा तथा श्रुतियों के अध्ययन से किसी को योग रूपी चिन्तामणि की प्राप्ति नहीं हो सकती। अपने मन से कोई चाहे कितना भी पुराणादि शास्त्रों का अध्ययन करता रहे अथवा प्राणायामादिक हठयोग के साधनों का अथवा ध्यान का अभ्यास करता रहे किन्तु जब तक गुरु की कृपा नहीं होती तब तक योगसिद्धि नहीं मिलती। श्रुतियों में भी इसको और अधिक पुष्ट कर दिया गया है कि–

''आचार्यवान् पुरुषो वेद''

(छांदोग्य उपनिषद्)

अर्थात् जिसको सद्गुरु की प्राप्ति हो गयी है वही पुरुष योग के रहस्यों को जान सकता है अन्यथा नहीं।

व्यावहारिक दृष्टि से भी तैराकी में निपुण व्यक्ति ही तैरना सिखा सकता है तथा डूबते हुये को बचा सकता है। यदि कोई पुरुष पुस्तकों में तैरने की क्रियाविधि का ज्ञान प्राप्त कर तीव्रगामी नदी में तैरने का दुःसाहस कर कूद पड़े तो उसके दुष्परिणाम ही निकलते हैं। योग की रहस्यमयी विद्या तो केवल अनुभव गम्य है, वह तो अनुभवी सिद्धयोगी की कृपा से ही मिल सकती है। इसीलिये स्कन्धपुराण में कहा है कि

आचार्याद्योग सर्वस्वमवाप्य
स्थिरधीः स्वयं।
यथोक्तं लभेत तेन
प्राप्नोत्यपि च निर्वृतिम्।।

(स्कन्दपुराण)

अर्थात् गुरु से योग के रहस्य को जानकर ही दृढ़मति पुरुष गुरु द्वारा निर्देशित–योगाभ्यास में लग जाय तभी उसको स्वयं ही योग–सिद्धि प्राप्त होती है जिसको पाकर परम शान्ति मिलती है।

कभी–कभी योग की विभूतियों से आकृष्ट होकर पुरुष गुरु के बिना ही पुस्तकों में पढ़कर अपने मन से ही प्राणायाम आदि क्रियायें करने लग जाते हैं और फलस्वरूप कुष्ठादि व

कासस्वासादि रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं। इसलिए हठयोग प्रदीपिका में स्पष्ट चेतावनी दे दी गयी है कि

हठान्निरुद्धः प्राणोऽयं
रोमकूपेषु निः सरेत्।
देहं विदारयत्येव
कुष्ठादि जनयत्यपि।।
ततः प्रत्याथित व्योसौ
क्रमेणारब्य हस्तिवत्।।

(हठयोग प्रदीपिका)

अर्थात् बिना गुरुनिर्देशित क्रम के विपरीत हठ पूर्वक यदि कोई प्राण का निरोध करता है तो प्राण उसके रोमछिद्रों से बाहर निकल जाता है और शरीर को विकृत कर देता है तथा कुष्ठादिक भयंकर रोगों की उत्पत्ति हो जाती है। अतएव जिस विधि का गुरुदेव निर्देश करें उसी विधि से शनैः शनैः यह प्राण जंगली हाथी की तरह वश में हो जाता है। शास्त्रों में प्राणजय की सिद्धि का ही उपाय बताया गया है कि–

यथा सिंहो गजो व्याघ्रो
भवेद्वश्यः शनैः शनैः।
तथैव सेवितो वायुरन्यथा
हन्ति साधकम्।।
युक्तं युक्तं त्यजेद्वायं
युक्तं युक्तं च पूरयेत।
युक्तं युक्तं च बध्नीया
देवं सिद्धिमाप्नुयात्।।

अर्थात् जैसे शेर, हाथी और व्याघ्रादि शक्तिशाली जंगली जानवर बिना उपाय के वश में नहीं आते और तनिक भी असावधानी होने पर घातक सिद्ध होते हैं, किन्तु युक्ति पूर्वक शनैः शनैः वश में होते हैं; वैसे ही प्राण को वश में करना चाहिए अन्यथा कुपित हुआ प्राण साधक को विनष्ट कर देता है। अतएव पूर्ण गुरु से युक्ति जानकर उसी के अनुसार युक्तिपूर्वक ही प्राण का पूरक, रेचक और कुम्भक करना चाहिए। इस प्रकार ही प्राण जय की सिद्धि प्राप्त होती है।

भगवान शिवजी ने भी वामदेव को उपदेश देते हुये यही सिद्धान्त पुष्ट किया है कि गुरु

कृपा के बिना प्राण जय नहीं होता। अतएव हठयोग के साधक को चाहिए कि

मरुज्जयो यस्य सिद्धस्तं
सेदेत गुरु सदा।
गुरुवक्त्रप्रसादेन कुर्यात्
प्राणजयं बुधः।।

(योग बीज)

अर्थात् साधक को ऐसे गुरु की सदैव निरन्तर सेवा करते रहना चाहिए जिसको प्राणजय सिद्ध हो गया है क्योंकि गुरुमुख से प्राप्त निर्देश के अनुसार चलने पर ही प्राण जय होता है। भगवान कपिल देव ने अपने सांख्य सूत्र में कहा है कि—

''प्रणतिब्रह्मचर्योपसर्पणानि।
कृत्वा सिद्धिर्वहुकालात्ताद्वत्।।''

अर्थात् जैसे इन्द्र को ब्रह्मचर्यादिक वृत्तों का पालन करते हुये नम्र भाव से अपने गुरु ब्रह्मा जी की शरण में जाने पर ही चिरकाल में सिद्धि प्राप्ति हुई वैसे ही साधकों को भी ब्रह्मचर्यादिक यम नियमों का पालन करते हुये विनीत भाव से गुरु की शरण में जाकर चिरकाल तक उनकी सेवारत रहना चाहिए तभी सिद्धि की प्राप्ति होगी अन्यथा नहीं।

बिना गुरुदेव के शास्त्रों का अध्ययन करते रहने से शास्त्रों के रहस्यों का ज्ञान नहीं हो पाता अपितु अनेक शङ्काओं में बुद्धि उलझकर ही रह जाती है। यदि कोई पुरुष निरन्तर लगन से परिश्रम कर किसी विद्या को जान भी ले किन्तु वह भी फलसिद्धि कराने में असमर्थ है ऐसा स्वयं भगवान सदाशिव जी ने प्रतिपादित किया है कि—

भवेद्वीर्यवती विद्या गुरुवक्त्र समुद्भवा।
अन्यथा फलहीना स्यान्निवीर्याप्यति दुखदा।।

(शिव संहिता)

अर्थात् गुरुमुख से प्राप्त विद्या ही वीर्यवती होती है अर्थात् फलदायिनी होती है। बिना गुरु मुख के स्वयं प्राप्त की गयी विद्या फल देने में समर्थ नहीं होती अपितु वह निर्वीर्या और दुखदायी ही सिद्ध होती है।

श्रुतियों में भी इसकी पुष्टि की गई है कि—

आचार्याद्धिव विद्या विदिता ''साधिष्ठं प्रापयति''

(छांदोग्य उपनिषद्)

अर्थात् गुरु मुख से प्राप्त हुई विद्या ही यथेष्ट फल देती है।

अब प्रश्न उठता है कि वह यथेष्ट फल क्या है जिसकी प्राप्ति गुरु कृपा के बिना संभव नहीं है। यह यथेष्ट फल योग की सिद्धि है जिसकी महिमा हमने अपने पिछले लेख के कुछ अंश में वर्णित की है। योग की सिद्धि का संबंध मन के निरोध से है और यह मन प्राण के साथ मिलकर उसी प्रकार एक हो गया है जिस प्रकार पानी में मिलकर दूध। इसीलिए अमनस्क खण्ड में भगवान महादेव जी ने प्रतिपादन किया है कि—

प्राणो यत्र विलीयते मनस्तत्र विलीयते।
मनो विलीयते यत्र प्राणस्तत्र विलीयते।।

अर्थात् जहाँ प्राणलय हो जाता है वहीं मन लय हो जाता है। अतएव प्राणजय होने पर मनजय हो जाता है और मन का निरोध हो जाने पर प्राणजय हो जाता है। प्राणजय में गुरु की अपेक्षा का सूक्ष्म वर्णन हम ऊपर कर आये हैं। अब मनोजय में गुरु की अपेक्षा का वर्णन करेंगे। भगवान् महादेव जी ने अपने मुखारविन्द से इसका इस प्रकार से निरूपण किया है कि—

तत्राप्यसाध्य पवनस्य नाशः
षडङ्गयोगस्य निषेवणेन।।
मनोविनाशस्तु गुरुप्रसादा—
निमेषमात्रेण सुसाध्य एव।।

अर्थात् प्राणपर विजय प्राप्त करना तो बहुत कठिन होता है किन्तु गुरु मुख से प्राप्त निर्देश के अनुसार षट चक्रों का ध्यानयोग से भेदन करते हुए गुरुकृपा से मनोजय तो अल्पकाल में ही सुसाध्य है।

अब यहाँ एक बात विचारणीय है कि जब दुर्लभ योगविद्या गुरु कृपा से अल्पकाल में ही प्राप्त हो सकती है तो वह गुरु कृपा कैसे प्राप्त हो। इस विषय में श्रुतियों ने उपदेश किया है कि—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।

अर्थात् जिस शुद्ध अन्तःकरण वाले श्रद्धालु साधक की जगदात्मा में परा अव्यभिचारिणी अनन्यभक्ति है और वैसी ही शुद्ध परमतत्वस्वरूप अपने गुरु में है उसी को श्रुतियों के रहस्यों का प्रकाश होता है। अतएव गुरु चरणों में जिस साधक की पूर्ण शरणागति होती है वही गुरुकृपा का पात्र होता है। पुण्य शाली गुरुभक्त को ही गुरु कृपा प्राप्त होती है, मनुस्मृति में गुरु कृपा प्राप्त करने हेतु निर्देश दिया है कि—

यथा खनन्खनित्रेण नरो वायधिगच्छति।

तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रुषुरधिगच्छति।।

(मनुस्मृति)

अर्थात् जैसे खोदते–खोदते अधिक गहराई में जाने पर ही मनुष्य को शुद्ध जल की प्राप्ति होती है वैसे ही निरन्तर गुरु–सेवा में रत रहने वाले शिष्य को ही गुरु कृपा से योग विद्या की प्राप्ति होती है। जगदात्मा भगवान श्री कृष्ण जी ने भी गीता में संकेत किया है कि–

जन्मनां सहस्त्राणामन्ते ज्ञानवान मांप्रपद्यते।

अर्थात् सहस्त्रों जन्मों की साधना के बाद जीव योगसिद्धि से मुझे प्राप्त करता है। पुनः वह योग–सिद्धि कैसे मिलती है इसका जगदात्मा भगवान् श्रीकृष्ण जी यही उपाय बताते हैं कि–

"तद विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनः तत्त्वदर्शिनः।।

अर्थात् उस योगविद्या को विनीत भाव से गुरु चरणों में अपने को अर्पण करके उनकी सेवा करके तथा जिज्ञासाभाव से उनसे पूछ करके जानो तभी वह तत्ववेत्ता गुरु योगविद्या का उपदेश करेंगे। यहाँ यह शंका नहीं करनी चाहिए कि ज्ञान योग से भिन्न है। वस्तुतः ज्ञान योगसिद्धि का फल है। इसीलिए जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण जी ने स्वयं अपने मुखारविन्द से स्पष्ट कर दिया है कि–

एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति।

अर्थात् ज्ञान और योग एक ही हैं जो यह समझता है वही यथार्थ समझता है।

यदि कोई यह शंका करे कि शास्त्रों में तो यह भी कहा गया है कि अपनी आत्मा ही अपना गुरु है, क्योंकि भागवत के एकादश स्कन्ध में लिखा है कि–

समुद्धरति ह्यात्मानमात्मनैवाशुभाशयात्।

आत्मनी गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः।।

अर्थात् यह पुरुष विशेष करके आप ही अपना गुरु होता है क्योंकि स्वयं ही विचार करके असुभ संसार से अपना उद्धार करता है।

महर्षि वशिष्ठ जी ने भी योगवाशिष्ठ में भगवान राम को उपदेश करते हुये कहा है कि–

उपदेशक्रमो राम व्यपस्थामात्रपालनम्।

ज्ञप्तेरस्तु कारणं शुद्धा शिष्यप्रज्ञै व राघव।।

अर्थात् हे राम गुरु का शिष्य को उपदेश करना तो मर्यादापालन मात्र है। वस्तुतः ज्ञान

की प्राप्ति का कारण तो शिष्य की विशुद्ध प्रज्ञा ही है।

पुराणों में भी बिना गुरु के ही गर्भ में ही वामदेव को ज्ञानप्राप्ति का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार जड़भरत को भी बिना गुरु के ज्ञान की प्राप्ति हुयी है। इस प्रकार की शंकाओं का समाधान अखिल लोक पावन भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में किया है कि–

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपिसः।

तत्र तं बुद्धिसंयोग लभत पौर्वदेहिकम्।।

अर्थात् पूर्व जन्मकृत योगाभ्यास के फलस्वरूप माया का विक्षेप स्वयं हट जाता है और साधक को पूर्वजन्म में गुरुकृपा से प्राप्त बुद्धि योग की इस जन्म में प्राप्ति हो जाती है। आत्मपुराण में भी यह बात स्पष्ट कर दी गयी है कि वामदेव जी को पूर्वजन्म में सनकादिकों के गुरु उपदेश के फलस्वरूप ही गर्भ में ज्ञान की प्राप्ति हुई। भगवान पतंजलि देव ने भी–

''भवप्रत्ययः विदेह प्रकृतिलयानाम्''

अर्थात् पूर्वजन्म में प्राप्त विदेहता तथा प्रकृतिजयत्व के कारण पुरुषों को जन्म लेने मात्र से योगसिद्धि की प्राप्ति का निरूपण कर यह बात स्पष्ट कर दी है। भागवत में अपनी आत्मा ही अपना गुरु है अथवा वशिष्ठ जी ने जो शिष्य की विशुद्ध प्रज्ञा को ज्ञानसिद्धि का हेतु बताया है उसका भी यही अभिप्राय है कि साधक को केवल गुरु के आश्रय ही नहीं रहना चाहिए अपितु गुरु द्वारा उपदेशित साधनाओं का अभ्यास करके अपने अन्तःकरण की शुद्धी करनी चाहिए, क्योंकि शुद्ध अन्तःकरण में ही योग विद्या का प्रकाश होता है और अन्तःकरण की शुद्धि उपासनाओं से होती है और उपासनाओं का बिना गुरु मुख से जाने यथार्थ ज्ञान नहीं होता है। अतः गुरु की अपेक्षा का विरोध नहीं है।

जैसे किसी बर्तन में चाहे जितना जल भरें यदि उसमें छिद्र है तो कदापि जल नहीं ठहरेगा। इसी प्रकार गुरुकृपा से प्राप्त योग विद्या उसी शिष्य के पास ठहरती है जिसके अन्तःकरण में अहंकार, काम, क्रोधादिक विकाररूप छिद्र नहीं है। अतः साधक को निरन्तर ब्रह्मचर्यादिक यम नियमों का पालन करते हुये निरन्तर गुरु द्वारा उपदेशित योगाभ्यास में रत रहना परमावश्यक है अन्यथा गुरु प्रदत्त योग विद्या अशुद्ध अन्तःकरण से निकलकर पुनः गुरु के पास वापिस चली जायेगी। इसीलिए जगदात्मा भगवान श्री कृष्ण ने गीता में उपदेश दिया है कि–

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।

युक्तस्वाप्नावबोधस्य योगी भवति दुःखहाः।।

अर्थात् जिसका आहार एवं व्यवहार नियमित तथा युक्त है और जिसकी कर्म प्रवृत्ति भी

युक्त है, जो नियमित एवं संयमित ढंग से सोता और जागता है उसी को दुःख नाशक योगसिद्ध सिद्ध होता है।

गोरक्षशतक में योग मार्ग के साधकों के लिये योगसिद्धि में बाधक वस्तुओं का त्याग करने का उपदेश दिया है कि–

वर्जयेद्दुर्जनप्रान्तं वह्निस्त्रीपथसेवनम्।
प्रातः स्नानोपवासादि कायक्लेशविधिं तथा।।

अर्थात् योग के साधकों को दुर्जनों की संगति, अग्नितापन, स्त्रीगमन, अधिक भ्रमण और शरीर को क्लेश देने वाली प्रातः स्नान और उपवास आदि क्रियाओं का त्याग कर देना चाहिये।

अमबिन्दु उपनिषद में भी योग जिज्ञासु साधक के लिए कुछ वर्जित कर्मों का उल्लेख किया है कि–

भयं क्रोधमयालस्यमतिस्वप्नातिजागरम्।
अत्याहारमनाहार नित्यं योगी विवर्जयेत्।।

अर्थात् योगी को भय, क्रोध, आलस्य, अतिनिन्दा–अति, जागरण, अधिक भोजन और निराहार का सर्वथा नित्य वर्जन करना चाहिए।

किसी भाग्यशाली जीव को परम कृपालु गुरु की कृपा से कुछ अनुभूतियों का प्रकाश होने भी लग जाय उसको भी शास्त्र चेतावनी देते हैं कि–

अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमग्रहः।
जनसंसर्गश्च लौल्यं च षड्भिर्योगो विनश्यति।।

अर्थात् अधिक भोजन करने से, अधिक परिश्रम से वार्तालाप से व्रत इत्यादि के कठिन नियमों के पालन से, सांसारिक जीवों के सम्पर्क से इन्द्रियों के भोगों में लोलुपता से योगविद्या का प्रकाश विनष्ट हो जाता है।

इसलिए जिन भाग्यवान साधकों को परम दयालु करुणानिधि कृपामय श्री महाप्रभु जी की कृपा से योग की अनुभूतियाँ हो रही हैं। वे अपने श्री गुरुदेव के द्वारा दी गई सम्पदा को व्यर्थ न खो देवें अपितु उपर्युक्त बातों को समझ कर उनका अवश्य ही पालन करें। अन्यथा सद्गुरु की दुर्लभ कृपा पाकर भी योगसिद्धि न पा सके तो पश्चाताप के अतिरिक्त कुछ हाथ न लगेगा। केवल विनाशकारी अहंकार का भूत सिर पर सवार हो जायेगा।

योग-दर्शन में 'ईश्वर-प्रणिधान'

(श्री कृष्णानन्द गुप्त, कछवा, मिर्जापुर)

महर्षि पतञ्जलि देव ने 'योगदर्शन' में क्रियायोग के तीन रूप बतलाये हैं। यथा-'**तपस्स्वाध्यायेश्वर प्रणि-धानानि क्रिया योगः**' अर्थात्-तप, स्वाध्याय व ईश्वर-प्रणिधान क्रियायोग हैं। प्रस्तुत लेख में हम इसके एक मात्र अंग 'ईश्वर-प्रणिधान' पर यथामति विचार करने का प्रयास करेंगे।

हमारे पूर्वाचार्यों ने समाधि-सिद्धि के लिए जहाँ अनेकानेक साधनों का निर्देश किया है, वहाँ भगवान पतंजलि देव ने इस परम सरल साधना '**ईश्वर प्रणिधानाद्वा**' की आज्ञा प्रदान की है। 'ईश्वर-प्रणिधान' का स्पष्टीकरण बहुत ही सुन्दर रीति से 'योगभाष्य' में किया गया है-

'ईश्वर प्रणिधान तस्मिन परम गुरौ
सर्व कर्मार्पणम्।'

(यो. द. 2/32 या. प्र. ना.)

उस परम गुरु परमेश्वर के निमित्त सम्पूर्ण कर्मों को समर्पण कर देना या कर्मफलों का त्याग करना 'ईश्वर-प्रणिधान' है।

जिस परम गुरु परमेश्वर के निमित्त सम्पूर्ण कर्मों के समर्पण की आज्ञा मिली है, उनका स्वरूप क्या है? क्योंकि संसार में कोई श्रीराम को कोई श्रीकृष्ण को कोई श्रीब्रह्मा को कोई श्रीविष्णु इत्यादि को ईश्वर बताते हैं अतः ईश्वर के स्वरूप का निरूपण महर्षि ने योगदर्शन के तीन सूत्रों में किया है-

(1) '**क्लेशकर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः।**'

(यो. द. 1/24)

अर्थात्-क्लेश, कर्म, विपाक आशयों से रहित पुरुष विशेष ईश्वर है।

(2) '**तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम्।**'

(यो. द. 1/25)

अर्थात्-जिससे अधिक कोई दूसरा नहीं है वह सर्वज्ञ है, उसमें ज्ञान पराकाष्ठा को पहुँच चुका है।

(3) 'पूर्वेषामपि गुरु कालेनानवच्छेदात्।'

(यो. द. 1/26)

समय के दायरे में बद्ध न होने के कारण वह (ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि) प्राचीन गुरुओं का भी गुरु परम गुरु है, पूर्व पुरुषों का भी बड़ा है।

अब हम इन सूत्रों में आये क्लेश, कर्म विपाक का अर्थ समझा कर यह बताने की कोशिश करेंगे कि वह सर्वोच्च सत्ता क्या है जिसे योगदर्शन में ईश्वर की संज्ञा प्रदान की गई है।

योग दर्शन में अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और मृत्युभय ये पाँच 'क्लेश' बताये गये है–

'अविद्याऽस्मिता राग द्वेषाभि–

निवेशा:क्लेशा:।'

(यो. द. 2/3)

कर्म चार प्रकार का होता है–शुक्ल, कृष्ण, शुक्ल–कृष्ण और अशुक्ल–कृष्ण। पाप कर्म तथा हिंसा, व्ययभिचार आदि का समूह कृष्ण कर्म' के अन्तर्गत। तप, स्वाध्याय, ध्यान आदि का समूह शुक्ल–कर्म के अन्तर्गत। परपीड़ा, अनुग्रह (पाप व पुण्य मिले हुये) आदि का समूह 'शुक्ल–कृष्ण' के अन्तर्गत। पाप व पुण्य दोनों से रहित ईश्वर समर्पित कर्म' अशुक्ल–कर्म' के अन्तर्गत आते हैं।

'कर्मा शुक्ला कृष्णं योगि नास्त्रिविध मितरेषाम्।

अविद्या आदि क्लेशों के रहने पर कर्मफल, जन्म, आयु और भोग होता है–

'सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगा:।'

(यो. द. 2/13)

इन सूत्रों के द्वारा हमें सुस्पष्ट पता चलता है कि महर्षि जिन परमगुरु परमेश्वर के निमित्त सम्पूर्ण कर्मों के समर्पण का आदेश हमें देते हैं, वह ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि न होकर अपितु कोई दूसरी सर्वोच्च सत्ता है, जो क्लेश, कर्म, विपाक आशयों से रहित है। वह नित्य शुद्ध चित्स्वरूप परमात्मा सृष्टि के आरम्भ से अबतक होने वाले गुरुओं का भी गुरु है व अनादि सिद्ध है। अतएव वह सत्ता क्या है। इस प्रश्न का समाधान करते हुए 'भास्वती टीका' में भाष्यकार कहते हैं–

पुर्वे गुरवो हिरण्य गर्भादय:

कालेनावच्छिद्यन्ते।।'

अर्थात्–जिनकी सत्ता काल की सीमा के अन्तर्गत है, वह अधिकृत सीमा है। सद्गुरु तत्व उससे भी आगे की वस्तु है। जिसकी कोई अवधि नहीं है जिसका कोई अन्त नहीं है। वह है

अनादि और अनन्त। शुद्ध चेतन है। वही सत्ता ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि के अन्दर भी अपना प्रकाश रखती है अतः निर्णयात्मक सिद्धान्त की बात यह है–

यत्रावच्छेदनार्थेन कालो
न उपावर्तते सगुरुः।'

अर्थात् जिसका अन्त करने के लिए काल उपस्थित नहीं होता या दूसरे शब्दों में जो सत्ता काल के अधिकार से आगे है जिसका न कोई आदि है और न अन्त है वही सत्ता सद्‌गुरु तत्त्व है जिसके विषय में हमारे शास्त्र कहते हैं–

भयावस्य अग्निस्तपति,
भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च,
मृत्युर्धावति पंचमः।।

❁ ❁ ❁

न तत्र सूर्योभाति न चन्द्रतारकं,
नेमा विद्युतोभान्ति कुतोऽयमग्नि
तमेव भान्त मनु भाति सर्व
तस्य भासं सर्व मिदं विभाति।।

अर्थात्–वही एक सत्ता इस तरह की है जिसके भय से अग्नि तपती है सूर्य तपता है वायु और इन्द्र दौड़े–दौड़े फिरते हैं और काल हर समय आज्ञा में रहता है। वह स्वयं प्रकाश है न वहाँ सूर्य चमकता है न चन्द्रमा चमकता है न बिजली का प्रकाश है। अग्नि का तो कहना ही क्या है। उसी के आलोक से सारा संसार आलोकित हो रहा है। वही सद्‌गुरु सत्ता परात्पर नित्य एवं नित्य पूज्य है। जिस शरीर को वह तत्व अपना अधिष्ठान स्वीकार करता है वह शरीर उसके तेज से प्रकाशित हो उठता है। नाम रूप से वन्दना उस शरीर हेतु की जाती है जिसके अन्दर वह तत्व प्रकाशित होता है। ये सभी प्रकरण यह प्रकट करते हैं कि वह अव्यक्त सत्ता जो सभी को प्रकाश देने वाली है सद्‌गुरु सत्ता ही है और उनके ही निमित्त सम्पूर्ण कर्मों का समर्पण कर देना या कर्म फलों का त्याग कर देना 'ईश्वर–प्रणिधान' है। यह कोई मनमाना अर्थ नहीं है, बल्कि 'ईश्वर–प्रणिधान' शब्द से साफ दृष्टिगोचर होता है और उसको योगदर्शन के सब टीकाकारों ने स्वीकार किया है। तत्वतः 'ईश्वर–प्रणिधान' भक्ति मूलक निष्काम कर्म योग है जिसका उपदेश जगदात्मा श्रीकृष्ण ने अपने अनन्य सखा अर्जुन के प्रति गीता में किया है। यथा–

यत्करोषि यदश्नासि,

यज्जुहोषि ददासि यत्।

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।

शुभाशुभ फले रेवं मोक्ष्यसे कर्म बन्धनैः।

(गी. 9/27–28)

'हे अर्जुन! तुम भोजन, होम, दान, तप आदि जो कुछ भी करते हो, सब मेरे अर्पण कर दो। इस प्रकार (ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करने पर) तुम शुभ–अशुभ फल रूप कर्मों के बन्धन से छुटकारा पा जाओगे।' योगवार्तिक कार विज्ञानभिक्षु ने (यो. द. 2/1 और 32) सूत्र के भाष्य की व्याख्या करते हुए 'कर्मार्पण' और 'फलार्पण' के विषय में कूर्म–पुराण के निम्नलिखित वचन की ओर संकेत किया है–

कामतोऽकामतो वापि यत्करोमि शुभाशुभम्।

तत्सर्व त्वयि संन्यस्तं त्वत्प्रयुक्तः करोम्यहम्।।

नाहं कर्ता सर्वमेतद् ब्रह्मैव कुरुते तथा।

एत ब्रह्मार्पणं प्रोक्त मृषिभिस्तत्त्व दर्शिभिः।।

हे ईश्वर! इच्छा से या अनिच्छा से जो कुछ भी शुभ या अशुभ कर्म करता हूँ वह तेरी प्रेरणा से करता हूँ। वह सब तेरे ही अर्पण है। जो कुछ करता है सो ब्रह्म ही करता है, मैं कुछ नहीं करता हूँ'–इस भावना पूर्ण विधि को तत्वदर्शी ऋषियों ने 'ब्रह्मार्पण कर्म' कहा है।

यद्वा फलानां संन्यासं प्रकुर्यात् परमेश्वरे।

कर्मणामेतदप्याहुर्ब्रह्मार्पण मनुत्तमम्।।

अथवा कर्मों के फलों को परमेश्वर के निमित्त अर्पण कर दे–यह भी श्रेष्ट 'ब्रह्मार्पण' है। भाष्यकार ने जो 'ईश्वर–प्रणिधान' की व्याख्या की है उसके दो अङ्ग है– (1) ईश्वर के प्रति सम्पूर्ण कर्मों को समर्पण करना और (2) कर्मफल त्याग।

आनन्द कन्द भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कर्मफल त्याग या कर्मफल संन्यास को ही सर्वश्रेष्ठ आलम्बन बताते हुए कर्मफल के त्यागने वाले को 'त्यागी', 'योगी' और 'सन्यासी' कहा है–

संक्षेप में 'ईश्वर–प्रणिधान' योगाभ्यास की प्रथम वर्णाक्षरी है, इसके द्वारा अन्य साधनों के अभ्यास में भी दृढ़ता आती है।

आश्रम समाचार–

श्री गुरु पूर्णिमा एवं श्री रुद्रमहायज्ञ महोत्सव धूमधाम से सम्पन्न

इस वर्ष श्री गुरु पूर्णिमा का उत्सव 27 जुलाई को श्रीसिद्ध गुफा संवाई धाम में बड़े ही धूम–धाम से मनाया गया। उत्सव के बाद 29 जुलाई से ही श्री रुद्राभिषेक यज्ञ का आयोजन रखा गया। इसमें 28 वेद पाठियों द्वारा 11 दिन तक लगातार रुद्राभिषेक का कार्यक्रम चलता रहा। इस कार्यक्रम के संचालक आचार्य श्री बैकुण्ठ शर्मा कर्णवास वाले थे। इनके कई वेद विद्यालय हैं जो क्रमशः कर्णवास, राजघाट एवं श्री वृन्दावन के हैं।

इस यज्ञ एवं योगानुष्ठान में सम्मिलित होने के लिये कई प्रदेशों के साधक लगभग 300 सौ की संख्या में रहे।

यज्ञ में साधक वेद पाठ के समय तो यज्ञ शाला में बैठकर मन्त्रों का श्रवण करते थे और अन्य समय में गुरु प्रदत्त मन्त्र का जाप एवं ध्यान योग का अभ्यास करते थे। दोपहर में सभी साधकों के लिये फलाहार की व्यवस्था रहती थी।

प्रात:काल साढ़े चार बजे आरती के पश्चात् गीता पाठ एवं 5 बजे से ध्यानाभ्यास का क्रम रहता था। सभी साधक पावन गुफा के सामने बैठकर जाप ध्यान किया करते थे। हमारे गुरुदेव ने हमेशा ही ध्यानयोग पर बल दिया है और इसमें दृढ़तापूर्वक आरूढ़ रहने की आज्ञा दी है।

ध्यान ही मनुष्य को नर से नारायण बनाने की विद्या है। जो साधक ध्यानयोग के महत्त्व को समझ लेता है वह उसमें दृढ़ता से जुट जाता है। यज्ञानुष्ठान वातावरण को बनाने का माध्यम होता है।

ध्यान के बिना मोक्ष संभव नहीं है। अज्ञान का नाश ध्यान से होता है और इसकी पराकाष्ठा पर पहुँचने पर ही आत्म साक्षात्कार होता है तभी जीव की बन्धन से मुक्ति होती है।

अनुष्ठान में साधक गुरुदेव के निर्देश के अनुसार कुछ खास नियमों का पालन करता है। उसकी एक निश्चित दिनचर्या होती है उसका आहार सात्विक होता है और कुछ साधक तो दिन भर मौन भी रहते हैं। आहार लघु ही लेना होता है। इस प्रकार से अभ्यास करता हुआ साधक कालान्तर में संसिद्धि को पा जाता है जोकि साधक का लक्ष्य रहा करता है।

इस प्रकार से प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी साधकों का यह अनुष्ठान सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

9 अगस्त को ही साधक अपने गन्तव्य की ओर लौट चले और अपने मन में दिव्य स्मृतियाँ संचित कर धाम से विदा हुये।

योग-आसन

मत्स्येन्द्रासन

वामोरुमूलार्पित दक्षपादं, जानोर्वहिर्वेष्टितवामपादम्।
प्रगृह्य परिवर्तितांगं श्रीमत्स्येन्दनाथोदितमासनं स्यात्॥

विधि – पद्मासन की विधि से अपनी बाईं जंघा हर दाहिने पैर को जमाये तदनन्तर उस बायें पैर को उठाकर अपने दाहिने पैर के घुटने के ऊपर से लेकर दाहिनी ओर जमा कर रख लें, उसके बाद अपने दाहिने हाथ को घुमाकर उस ही दाहिनी ओर जमे हुए बायें पैर के घुटने को बायीं ओर लाकर दृढ़ता से उसी पैर के पंजे को पकड़ कर वहीं दृढ़ता से हाथ को जमाये रखे और सीधा बैठें इसी का नाम मत्स्येन्द्रासन है। इसी विधि से पैरों को बदल कर बायें पैर को दाहिनी जंघा पर रख कर व दाहिने पैर को बायें पैर के घुटने के पास से खड़ा पंजा लगाकर बायीं ओर जमा दें। उसके बाद अपने बायें हाथ को उस दाहिने जमे हुए पैर दाहिनी ओर से घुमा कर उस दाहिने ही पैर के पंजे को दृढ़ता से पकड़ कर हाथ वहीं जमाये रखें, इस प्रकार यह आसन दोनों ओर से बदल–बदल कर किया जा सकता है इस आसन को करते हुए अपनी दृष्टि भ्रूमध्य रखनी चाहिए।

समय – पहली बार ही अभ्यास करने वाले को पद्मासन की तरह उसे भी 10 या 20 सैकन्डों से ही आरम्भ करना चाहिए, बाद में पाँच–पाँच सैकन्ड बढ़ा कर अभ्यास को ऊँचा बढ़ाया जा सकता है।

लाभ – इस आसन की विधि इस प्रकार की है कि जिसमें मेरुदण्ड स्वाभाविक ही सीधा रहता है, मेरुदण्ड के सीधे रहने से सुषुम्ना की गति स्वतः ही हो जाती है। अतः यह आसन मन की एकाग्रता का दाता है। कुण्डलिनी प्रबोध करने वाला है। पीठ में होने वाले व उदर में होने वाले सभी बात विकारों का नाशक है, जठराग्नि का वर्धक है। आँतों को पूरा–पूरा बल देता है। शौच शुद्धि के लिए भी उत्तम है।

श्री रामलाल प्रभवे नमः

यह सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि टोडर पुर स्थित योगेश्वर श्री चन्द्र मोहन जी महाराज योगाश्रम का वार्षिक योग सम्मेलन 25 अक्टूबर से 28 अक्टूबर तक रहेगा। 28 अक्टूबर को भंडारा होगा। यह आश्रम राजा तालाब से 5 किलोमीटर बनारस की ओर है।

जय गुरुदेव !

योगेश्वर चन्द्र मोहन योग आश्रम समिति

साधना का सामान्य क्रम

" विषयासक्ति वाली निम्न और उसे अपने मार्ग में पड़ने वाली बाधाओं के सोच में ही रहना भूल है। इस प्रकृति और इन बाधाओं का विस्तार साधना का अभावपक्ष है। इन बाधाओं को देखना, समझना और हटाना अवश्य ही एक काम है ; पर इस को सब कुछ समझकर इसी में सर्वात्मना सदा लगे रहना ठीक नहीं। साधना का जो भाव पक्ष है, अर्थात् परा शक्ति के अवतरण का अनुभव– वही मुख्य बात है। यदि कोई यह प्रतीक्षा करता रहे कि पहले निम्न प्रकृति सदा के लिए सर्वथा शुद्ध हो ले तब परा शक्ति के आने की बाट जोही जाये, तो ऐसी प्रतीक्षा तो सदा करते ही रहना पड़ेगा। यह सच है कि निम्न प्रकृति जितनी ही शुद्ध होगी, उतना ही परा प्रकृति का उतर आना आसान होगा; पर यह भी सच है, बल्कि उससे भी अधिक सच है कि परा प्रकृति उतरना जितना होगा उतनी ही निम्न प्रकृति निर्मल होगी। पूर्ण शुद्धि या स्थिर रूप से पूर्ण अवतरण एक बारगी ही नहीं हो सकता, यह दीर्घकाल में निरन्तर धैर्यपूर्वक क्रमशः ही होने का काम है। चित्त ही शुद्धि और भगवच्छक्त्यवतरण दोनों का काम एक साथ चलता है और दिन–प्रतिदिन अधिकाधिक स्थिरता और दृढ़ता के साथ दोनों एक दूसरे को आलिंगन करते हैं– साधना का यह सामान्य क्रम है। "

– योगिराज महर्षि अरविन्द

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
एकमात्र हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपाभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।।
(मनु स्मृति 5/109)

अर्थात जल से शरीर की शुद्धि, सत्य से मन की शुद्धि, विद्या और तप से जीवात्मा की शुद्धि और बुद्धि की शुद्धि होती है।

संरक्षक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14586. सम्पादक : आचार्य प्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा